भिखारी

[भोजपुरी के लोक कलाकार भक्त भिखारी की समस्त रचनाओं का विश्लेषण]

महेश्वरा आर्य

लोक कलाकार भिखारी ठाकुर आश्रम के प्रथम पुष्प

भिखारी

भोजपुरी के लोक कलाकार भक्त भिखारी की समस्त रचनाओं का विश्लेषण

लेखक
महेश्वर आर्य

लोक कलाकार भिखारी ठाकुर आश्रम
कुतुबपुर (सारन)

BHIKHARI

[A critical Study of all Writings of Bhojpuri folk-dramatist & devotee Bhikhari]

by

Maheshwaracharya

Price : Rs. 5/- only

भिखारी

प्रकाशक : लोक कलाकार भिखारी ठाकुर आश्रम,
कुतुबपुर (सारन) निबंधन सं० २०/७५
संस्करण : प्रथम : १३ जनवरी, १९७८
© : प्रकाशक
मूल्य : ६/- रुपया मात्र
मुद्रक : जयदुर्गा प्रेस
नयाटोला, पटना-८००००४

सम्मतियाँ

पहिले पहलि भरवली गइलीं। भात महेसर जी के खइलीं॥
उतुका भिरी बतुस जे पवलीं। आंखि फारि के निरिख लगवलीं॥
लोकगीत के बड़हन मरमी। लिखलु निबन्ध सनातन धरमी॥
'गीता प्रेस' से रहे रहबट। यू०पी० में बान्हल जिनिकर ठट॥
रहसु चलावत जात हरोहर। कलम 'भिखारी ठाकुर' ऊपर॥
कहीं खोलिके बात सितरिया। माने जनि केहु मसखरिया॥
भोजपुरी से बड़ल इयारी। बनले मन के मीत भिखारी॥

—अविनाशचन्द्र 'विद्यार्थी' ('कौशिकायन' से)

श्री महेश्वराचार्य भोजपुरी के ऐसे प्रेमी हैं, जिनकी साधना में भावना के साथ अध्यवसाय का विरल सामंजस्य मिलता है। इन्होंने अनेक वर्षों तक भोजपुरी जनपद में घूम-घूम कर लोकगीतों का संकलन और अनुशीलन किया है। लगभग १९३५ से ही इनकी साधना चल रही है। 'जनकवि भिखारी ठाकुर' तथा 'भिखारी' नामक आलोचनात्मक पुस्तकों के द्वारा महेश्वराचार्यजी ने भोजपुरी के लोकप्रिय नाटककार और गीतकार भिखारी ठाकुर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सहानुभूतिपूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत किया है। भिखारी ठाकुर के साहित्य में प्रेम, भक्ति, हास्य और व्यंग्य-विद्रूप के विविध माध्यमों से समाज-सुधार की उद्देश्य-सिद्धि हुई है। नाटक के सर्व जन सुलभ धरातल पर लोकसंग्रह और लोकरंजन का समन्वय भिखारी की प्रसिद्धि का आधार रहा है। अभी उनका अध्ययन आरम्भ ही हुआ है। महेश्वराचार्यजी जैसे भिखारी ठाकुर के मर्मी विशेषज्ञ से उनके कृतित्व के विभिन्न अंशों पर अभी और समीक्षा-पुस्तकों की अपेक्षा स्वाभाविक है।

—विश्वनाथ सिंह
प्राचार्य, अ० मे० कॉलेज, गया

श्री महेश्वराचार्य हिन्दी और भोजपुरी के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार हैं। ये भोजपुरी के अमर साहित्य-स्रष्टा भिखारी के अधिकारी विद्वान् हैं। 'जनकवि भिखारी ठाकुर' लिखकर इन्होंने भिखारी साहित्य का जो अध्ययन एक-दो दशक पहले प्रस्तुत किया था, वह आज भी अद्वितीय है।

प्रस्तुत आलोचनात्मक कृति में इन्होंने उस अध्ययन को आगे बढ़ाते हुए भिखारी की भावुकता, कलात्मकता और भक्ति-भावना का जो प्रभावकारी मूल्यांकन प्रस्तुत किया है, वह अपने आप में मील-स्तम्भ है।

निस्संदेह भिखारी-साहित्य के भावी अध्येताओं के लिए 'भिखारी' बहुत दिनों तक एक प्रामाणिक आधार-ग्रंथ बना रहेगा।

—रामेश्वर नाथ तिवारी

श्री जगदीश निकेतन,
नया शिवगंज, आरा

१५-१२-७७
रीडर, हिन्दी विभाग
हरप्रसाद दास जैन कॉलेज,

श्री महेश्वराचार्यजी ने 'भिखारी' की रचना से लोकसाहित्य और हिन्दी साहित्य को एक नया अवदान दिया है। श्री आचार्य हिन्दी समीक्षा और निबन्ध के अग्रणी रचनाकार रहे हैं। उन्होंने लोकभाषा के विश्रुत कवि-नाटककार भिखारी के काव्य-सौष्ठव, रंग-सौंदर्य एवं भक्ति-रमणीयता को अपने तीखे समीक्षात्मक तेवर एवं अभिव्यक्ति का निकष दिया है और सहृदयता से उनकी रचनाओं को देखा-परखा है। अपने लक्ष्य में लेखक को अपूर्व सफलता मिली है। समीक्षा की भाषा तो लाजवाब है ही।

—डॉ० जितराम पाठक

२७-१२-७७
प्राचार्य, म० वि० म०, बक्सर

लोककवि भिखारी ठाकुर की कृतियों के प्रचार-प्रसार की दिशा में जो भी प्रयास होगा, वह सदा स्तुत्य होगा। इसलिए 'भिखारी' के प्रकाशन पर मुझे परम हर्ष का अनुभव हो रहा है। आशा है, साहित्य-रसिकों में इस पुस्तक का समुचित समादर होगा!

—कलक्टर सिंह 'केसरी'

२-१-७८

प्रकाशकीय

लोक कलाकार भिखारी ठाकुर आश्रम के उद्देश्यों में "भिखारी ठाकुर ग्रन्थावली" का प्रकाशन भी है। ग्रन्थावली के प्रकाशन के पहले ठाकुर जी की साहित्यिक-सांस्कृतिक सेवा का परिचय प्रस्तुत किया जाना आवश्यक प्रतीत हुआ। इस ग्रन्थ के बाद आश्रम का अगला कार्य उनकी कृतियों को प्रकाश में लाना अभीष्ट है।

इस ग्रन्थ के विद्वान लेखक श्री महेश्वराचार्य का आश्रम विशेष रूपेण आभारी है। श्री नगेन्द्र प्रसाद सिंह, जयदुर्गा प्रेस, पटना के आत्मीय सहयोग से ही ग्रन्थ की सुरुचिपूर्ण छपाई समय पर हो सकी। कुतुबपुर को नक्शे में सुस्पष्ट करने का श्रेय श्री राजेश्वर प्रसाद वर्मा को है।

रामदास 'राही'
मन्त्री
लोक कलाकार भिखारी ठाकुर आश्रम
कुतुबपुर (सारन)

दो शब्द

लोकभाषा की मन्दाकिनी जातक एवं आगमों के हिमालय से उतर कर अपनी अमन्द गति से प्रवहमान हो साहित्य की प्रत्येक विधा को पावन बनाती गयी और उन लोकभाषाओं का अमर साहित्य देदीप्यमान हो उठा।

सच तो यह है कि प्रत्येक देश जन-नाटकों के किसी-न-किसी रूप का प्रवर्त्तक रहा है। भारतवर्ष भी इसका अपवाद नहीं है। डॉ० ओझा के उल्लेखानुसार भारत में भी बंगाल यात्रा तथा कीर्त्तनियाँ नाटकों के लिए प्रसिद्ध रहा है। अवधी, पूर्वी हिन्दी, ब्रज तथा खड़ी बोली में रास, नौटंकी, स्वांग एवं भांड आदि प्रमुख रहे हैं। राजस्थानी में रास, झूमर, ढोला आदि का प्रचार पाया जाता है। गुजराती भवाई के लिए ख्यात है। महाराष्ट्र में लड़िते एवं तमाशा प्रमुख हैं। तामिल में भगवत मेल की चर्चा आती है। बिहार में बिदेसिया (नाटक) सर्वोपरि है।

बिहार के उसी बिदेसिया (नाटक) के प्रवर्त्तक एवं लोक-वीणा के तारों की झंकार के साथ स्वयं थिरकनेवाले भिखारी ठाकुर अपने युग के सर्वश्रेष्ठ लोक कलाकार थे। भिखारी ने हिन्दी के अनेक संत कवियों की तरह कहीं शिक्षा नहीं पायी थी, किन्तु, उन्हें दैवी प्रतिभा का अपूर्व सौभाग्य प्राप्त था। भिखारी के कण्ठ में अपूर्व माधुरी थी एवं स्वर में अद्भुत आकर्षण था। अभिनय-कला तो उन्हें वरदान रूप में प्राप्त थी। यही कारण है कि उनका 'बिदेसिया' रूपक उन्हें अल्प काल में ही अक्षय यश दे गया।

भिखारी ने समाज की कुरीतियों को बड़ी सूक्ष्मता के साथ देखा था। जत्थ, नाई होने के कारण, समाज के प्रत्येक क्षेत्र में, प्रत्येक अवसर पर, भिखारी का प्रवेश निर्विरोध था। अतः भिखारी से समाज का कुछ भी कटु-मधु तिरोहित न रह सका। इस प्रकार भिखारी ने जो कुछ देखा, जो कुछ पाया, उसे अपनी प्रतिमा का प्रसाद एवं वर्ण, रूप, गंध देकर अत्यन्त सरस-मनोहर बना दिया। भिखारी की रमणीयता का यही रहस्य है।

भिखारी के रूपकों की एक लम्बी कतार है, जिसमें बिदेसिया, भाई विरोध, विधवा-विलाप, पुत्र-वध, गंगा स्नान, ननद-भौजाई, घिचोर बहार, बुढ़शाला, बेटी वियोग, कलयुग बहार, नाई बहार, अनमेल विवाह, कलियुग प्रेम प्रभृति

प्रमुख हैं। भिखारी के उल्लिखित सभी रूपक समाज के स्वच्छ दर्पण हैं। उनके 'बिदेसिया' ने तो समाज में ऐसी सफलता पायी कि उसके नाम पर बिदेसिया नाटक एक नृत्य तथा नाट्य-समुदाय ही चल पड़ा। भिखारी के दूसरे रूपक भिखारी के बिदेसिया की तरह कीर्तिमान न हो सके, तथापि उनमें कला-कौशल एवं आकर्षकता का अभाव नहीं है।

भिखारी शृंगार के उद्दीपन गायक हैं; किन्तु, उनके वियोगान्त पक्ष के उद्घाटन में ही उन्हें विशेष सफलता मिली है। 'विधवा-विलाप' में नारी के विधवा रूप करुणा के कालिन्दी कूल पर ही उतरे हैं। 'विधवा-विलाप' की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

कवन कसूर कइलीं घर से निकालल गइलीं,
छूटल जात बा नइहर ससुरवा हो बबुआ!
पर पति साथ सती कबहूँ ना भइल सती,
धनवाँ कारनवाँ तेयाग मति हो बबुआ।

भिखारी सामाजिक विषमता के चित्रण में प्रत्यक्ष-दर्शी जैसे प्रतीत होते हैं। 'बेटी वियोग' की कुछ पंक्तियों में भिखारी की लेखनी के जादू का चमत्कार दर्शनीय है—

आँख से सूझत कम हरदम घींचत दम,
मथवा के बरवा चँवरवा हो बाबूजी!

प्रस्तुत कृति भिखारी के रूपकों पर आधृत है। कृतिकार महेश्वराचार्य जी १९५० में प्रकाशित आलोचना-ग्रन्थ 'पंचामृत', 'चतुर्युगी' इत्यादि के लेखक अपरिचित हस्ताक्षर नहीं हैं। 'चतुर्युगी' के आलोचित विषयों के शीर्षक—'कामायनी' की श्रद्धा, 'साकेत' की उर्मिला, 'प्रियप्रवास' की राधा और गुप्तजी की यशोधरा उनके चिन्तन-पथ के प्रमाण हैं। वस्तुतः चतुर्युगी के निबन्ध श्री महेश्वराचार्य जी की आलोचना पद्धति एवं उनके नीर-क्षीर विवेक के निदर्शन हैं।

श्री महेश्वराचार्य जी आलोचक के रूप में जितने प्रशस्य हैं, उनका कवि—रूप भी उतना ही यशस्व है। उनकी 'बाढ़' शीर्षक भोजपुरी कविता की पंक्तियाँ उनकी कवि-प्रतिभा के बड़े ही पावन प्रसाद हैं—

गइयाँ घेराइल आइल गंगा के बढ़िया रे,
बड़े-बड़े गड़हा भरि के अन गदले पढ़िया रे।
पनियाँ में लटकल आला फेड़वन के डढ़िया रे।

महेश्वराचार्य जी की 'विरहिणी बाला' का परिचय पढ़िये—

सइयां निरमोहिया गइले, कवना दो नगरी,
ना कइलीं चुकवा कवनो, ना कइलीं रगरी,
पानी भरे गइल रहीं पोखरा के कगरी,
हमवा के लोटा डोरी सिरवा प गगरी,
घरी भर में घइला भरि के धइ लिहलीं डगरी।
ना लउके जना छड़ी ना लउके पगरी,
अँगना दुआरे घरे खोज अइलीं सगरी,
सोने के अंगुठिया में हीरवा के नगरी,
ओहीं गइल हिया 'शिव' सइयां ठगरी।
सइयां निरमोहिया गइले कवना दो नगरी !

श्री महेश्वराचार्य जी ग्राम-वासी हैं। इन्होंने गाँव की दुनियाँ में रहकर अपने शैशव से यौवन तक की जिन्दगी बितायी है। अतः गाँव-प्रकृति के अंचल में पले सामाजिक रंग-रूप एवं अनुभूतियों की मार्मिकता इनकी आलोचना एवं कविता का विषय सहज ही बन बैठी है। इनकी 'प्रतीक्षा' में ग्राम-गीतों की एक कड़ी बरहमासा का बड़ा मर्म स्पृक् रूप उभरा है—

बइसल बइसाख, जरे जेठ में जहनवां हो
बिरह गलावत बइए कंचन के तनवां हो।
कहिया ले अइब राम ! 'शिव' के भवनवां।

अस्तु, काव्य-साहित्य की इस पृष्ठभूमि में श्री महेश्वराचार्य जी की साधना को सिद्धसुन्मुख कहकर उन्हें गौरवान्वित करना पक्षपात नहीं कहा जायगा। श्री महेश्वराचार्य जी एकान्त सारस्वत हैं। ये मम्मट के 'काव्य यशसेऽर्थकृते' प्रयोजन से अपने को दूर रखकर 'स्वान्तः सुखाय' का राग आलापनेवाले कवि एवं आलोचक हैं। इनका विश्वास है—'नहि कस्तूरि कामोदः शपथेन विभाव्यते।'

मैं श्री महेश्वराचार्य जी की प्रस्तुत कृति का हार्दिक प्रशंसक हूँ। श्री महेश्वराचार्य जी एवं उनकी प्रस्तुत कृति को मेरी अनेक मंगल कामनाएँ सादर सप्रेम समर्पित हैं।

देववाणी शोध मन्दिर
मिश्र टोला, आरा
१३ जनवरी, १९७८

—(डॉ०) रामनाथ पाठक 'प्रणयी'

गूँगे केरी सरकरा !

अपने बचपन में, जाड़े के दिनों में, रजाई के नीचे, अपने गाँव के शान्त वातावरण में, सुरीली आवाज में आ रही 'रामचरितमानस' की चौपाइयों के मधुर-मादक स्वर ने मुझे जितना अभिभूत किया, वह चिरस्मरणीय छाप मेरे मस्तिष्क पर छोड़ गया। मुझे आज भी स्मरण है वह सहज चौपाई—'आगे चले बहुरि रघुराई'।

आचार्य शुक्ल की टिप्पणी से पीछे ज्ञात हुआ कि उस चौपाई में कोई रस नहीं है; फिर भी, कथा के प्रवाह में इतनी प्रखरता है कि वह नीरस चौपाई भी सरस हो गई है।

उपरोक्त दोनों तत्वों ने क्षेत्रीय भाषाओं में प्रचुर साहित्य की ओर मेरी रुचि, मेरे अध्ययन और मेरी निष्ठा को प्रेरित किया। जैसे-जैसे मैं क्षेत्रीय भाषाओं, विशेषतः भोजपुरी के सम्पर्क में आया, यह मुझे सरस, भावपूर्ण, काव्यमयी और मर्म-स्पर्शी लगी। इसी बीच अपने कलकत्ता प्रवास में सुरीली आवाज में आ रही उस गीत की पंक्ति ने मुझे बहुत दिनों तक बेचैन रखा—

होत भिनुसरवा जइबऽ राजा कलकतवा,
तनि बोलि बतिआलऽ कि अइबऽ कि ना ?

सन १९३५ ई० से सन् १९५० ई० तक हिन्दी के विभिन्न श्रेष्ठ पत्र-पत्रिकाओं में भोजपुरी के विभिन्न पक्षों तथा मुख्यतः भिखारी की रचनाओं पर समीक्षात्मक निबन्ध लिखने का अवसर मिला, जिसका चतुर्दिक स्वागत देखकर मेरा उत्साह बढ़ा। सरस्वती सम्पादक पं० देवीदत्त शुक्ल, भोजपुरी के सचेत प्रहरी पं० गणेश चौबे और सुधी समीक्षक (तत्कालीन विद्यार्थी) श्री रामेश्वर नाथ तिवारी, रीडर, मगध विश्वविद्यालय की बधाइयों की वर्षा भी इस अकिंचन पर हुई।

पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित भिखारी विषयक इन्हीं निबन्धों का संग्रह कर भोजपुरी परिवार, पटना ने 'जनकवि भिखारी ठाकुर' नामक पुस्तक का प्रकाशन किया। उसका समादर देखकर मुझे प्रेरणा मिली कि भिखारी पर नये सिरे से सर्वांगतः विवेचन किया जाय, जिसका प्रतिफल है यह पुस्तक—भिखारी।

हाँ, तो जब से मैंने भिखारी पर लिखना प्रारम्भ किया था, तभी से भिखारी अपनी कीमती रंगकर्मी के साथ-साथ अन्यान्य रूपों में भी जानने-मानने लग गये थे।

उन पर अनेकानेक विद्वानों की दृष्टि भी पड़ने लग गई थी और भिखारी के समर्थकों की संख्या भी बढ़ने लग गई थी। श्री माथुरजी ने भी उनपर लिखा 'जिन्होंने जीना जाना'। मुझे लगा कि भिखारी ने स्वयं ही नहीं जीना जाना; प्रत्युत्, दूसरों को जिलाना जाना। कहाँ हो रहा है उस तरह का सुधा-स्राव भोजपुरी जनपद में—भिखारी के निधन के पश्चात् ?

इस पुस्तक में भिखारी के रसीले पद पढ़ने को मिलेंगे, इसके सिवा और कुछ नहीं। मैंने जान-बूझकर अधिकाधिक पदों को पुस्तक में रख दिया है। मेरा उद्देश्य यही है कि जबतक 'भिखारी-ग्रन्थावली' का सुसम्पादन नहीं हो जाता, तबतक भिखारी के प्रेमियों को इसी पुस्तक के माध्यम से रसास्वादन होता रहेगा।

भिखारी पर अभी तक कुछ भी नहीं लिखा गया है। मैंने अपनी दोनों पुस्तकों के द्वारा मात्र विद्वानों का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया है। भिखारी पर अभी बहुत कुछ लिखना शेष है।

लोक कलाकार भिखारी ठाकुर आश्रम का अवश्य मैं आभारी हूँ, जिसने मेरे इस रचना का प्रकाशन किया है। ट्रेनिंग स्कूल के अवकाश-प्राप्त प्राचार्य बन्धुवर श्री सत्यनारायण लाल का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ, जिन्होंने आश्रम को पुस्तक प्रकाशित करने के लिए प्रोत्साहित किया है। और, श्री नगेन्द्र प्रसाद सिंह का आभार प्रकट करने की ताकत मेरी लेखनी में नहीं है, जिन्होंने अपनी अनुपम सूझ-बूझ द्वारा पुस्तक को सर्वांगसुन्दर सजा दिया है। भागवत सिंह कॉलेज, गड़नोखा के वि० श्री धर्मवली राय को मैं कैसे भुला दूँ, जिनके आवास पर इस पुस्तक का प्रणयन प्रारम्भ किया गया था।

अन्त में, जिन सज्जनों की बहुमूल्य सम्मतियाँ मिली हैं, उनके प्रति धन्यवाद अथवा बधाई का कोरा शब्द लिखकर उनके प्रेम के महत्त्व को मैं घटाना नहीं चाहता। सभी सम्मतिदाता मेरे अन्तरंग आत्मीय जन हैं। अतः उनके प्रति मेरा रोम रोम कृतज्ञ है, पर वाणी मूक ही है।

भिखारी जयन्ती : सं० २०३४ वि०
श्री भूतनाथ आश्रम, लखनऊ

—महेश्वराचार्य

भिखारी

भोजपुरी के लोक कलाकार भक्त भिखारी की समस्त रचनाओं का विश्लेषण

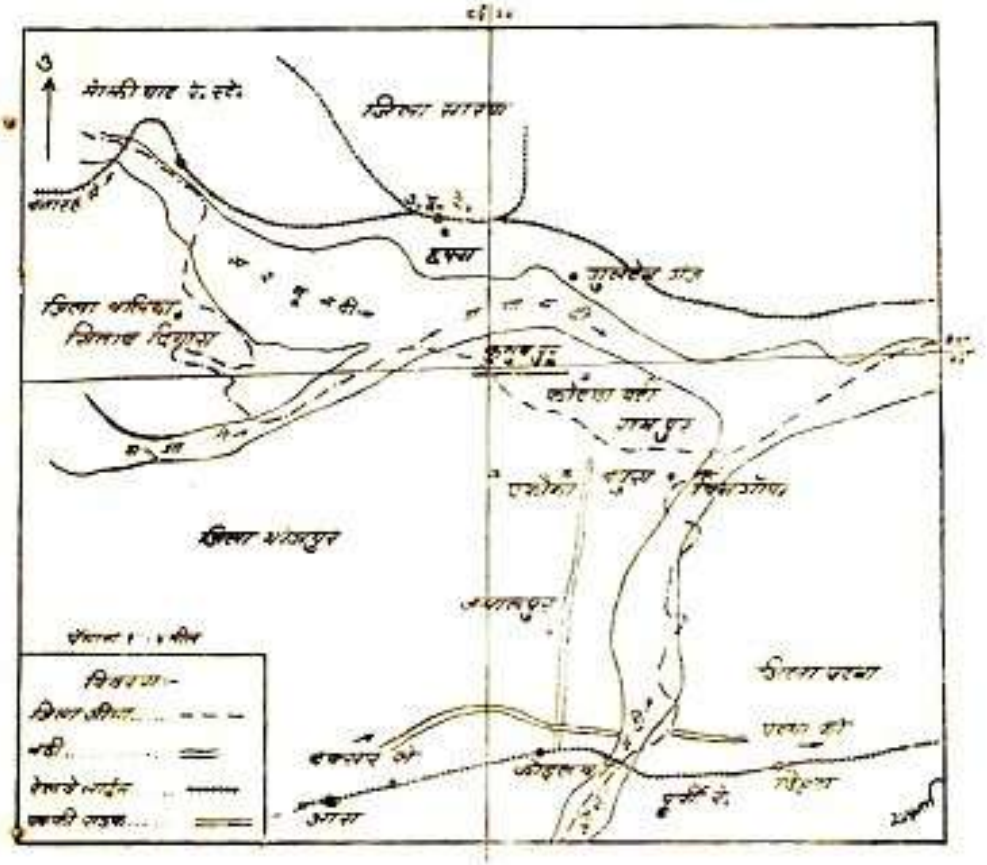

विषय-क्रम

१. गलती बहुत लउकले जाई !	...	१७
२. पटहा कवन अनमोल ?	...	२४
३. मइया पटकत बानी माथ !	...	२८
४. राम कहऽ सुगवा !	...	३२
५. चितचोर रामजी दुलहा !	...	३८
६. लागल बा कुबरी के तीर !	...	४६
७. धरती हमें पताल खिलावऽ !	...	५४
८. रखिहऽ चरन के सरन !	...	५८
९. जनम जनम दीहऽ दरस !	...	६४
१०. उमरिया भरिया ना !	...	६९
११. हो मोर देवर दुलरू !	—	७७
१२. छछनबलऽ जियरा !	...	८३
१३. ए मोर जाउत दुलरू !	...	९१
१४. अब होइबू लरकोर !	...	९६
१५. दुखवा समुझऽ हीरा !	...	१०१
१६. पियऊ निसइल !	...	१०५
१७. लहुरी ननदिया ए सइयां !	...	१०६
१८. भीतरे बइठल माथ कमावऽ !	...	११३
१९. कहेले असले बात भिखारी !	...	११७
२०. अँचरी नहिं भीजत बा एहि बेरी !	...	१२१
२१. टिकुली चोली सारी में !	—	१२६
२२. सदा भिखारी रहत भिखारे !	...	१३१

गलती बहुत लउकते जाई !

आरा जिला ससहर, ससुराल फुकहर, आरा जिला पुरोहित गुरु आरा परिवार हउ।
आरा जिला राजा, दीवान छड़ीदार आरा, डाकघर बबुरा, बरहमाबां में बजार हउ।
थाना बड़हरा, आरा छपरा के बीच जो परत करीब चकिया सटकुर बाजार हउ।
दहकर कुतुबुर गाँव बसल दिअरा में, तबहीं से भिखारी कहत छपरा प्रचार हउ।

यह निर्विवाद है कि भिखारी भोजपुरी की विभूति हैं। उनके सारे सम्बन्ध, समस्त सरोकार आरा जिला में है। हिजरी सन् १२७४ के भादो में कुतुपुर दहकर दियारे में चला आया, जिससे भिखारी छपरे के समझे जाने लगे। अपनी जन्म-तिथि के विषय में वे स्वयं लिखते हैं कि उनका जन्म सं० १९४४, शकाब्द १८०९, तदनुसार सन १८८७ ई० पौष मास शुक्ल पंचमी सोमवार को दोपहर दिन में हुआ था। आठ वर्ष की अवस्था तक की बातें उन्हें याद नहीं, मगर नौ वर्ष की उम्र हो जाने पर उनकी स्मृति तीव्र हो चली। एकादश वर्ष की अवस्था हो जाने पर उन्होंने अपने जीवन-वृत्त से सम्बद्ध कुछ आवश्यक बातों की चर्चा इस प्रकार की—'दस सिंगार पिता के नामा' और 'कनउजिया नाउ नाम भिखारी' इत्यादि। पुनः

बारह सौ पंचानवे जहिया। सुदी पुस पचमी रहे तहिया॥
रोज सोमार ठीक दुपहरिया। जनम भइल ओही घरिया॥
× × ×
'बरिस एकादस के हम भइलीं। तीरथ बरत सतसंग ना कइलीं॥
नव बरिस के जब हम भइलीं। विद्या पढ़न पाठ पर गइलीं॥
बरिस एक तक जबदन मनो। लिखे ना आइल रामगती॥
मन में विद्या तनिक न भावत। कुछ दिन फिरलीं गाइ चरावत॥
गइया चारि रही घर माँही। ओहि के नीत चरावन जाहीं॥
जब कुछ लगलीं माथ कमावे। तब लागल विद्या मन भावे॥
माथ कमाई नेवतों बिठी। विद्या में लागल रहे दीठी॥
बनिया गुरु नाम भगवाना। उहे ककहरा सात पढ़ाना॥
अलप काल में सीखे लगलीं। तेकरा बाद खड़गपुर भगलीं॥
ललसा रहे जे बहरा जाईं। छुरा चलाकर दाम कमाईं॥
गइलीं मेदिनीपुर के जीला। ओहिजे कुछ देखलीं रमलीला॥

ठाकुर दुअरा उहाँ से गइलीं। चलत तलाव समुद्र नहइलीं॥
दरसन करि डेरा प आईं। खोलि पोथी देखलीं चौपाई॥
फुलवारी के जगह बुझाइल। तुलसी-कृत में मन लपटाइल॥

× × ×

धरे आके लगलीं रहे। गीत कवित्त कतहुँ केहु कहे॥
अरथ पूछि-पूछि के सीखीं। दोहा छन्द निज अछर लीखीं॥

× × ×

साधू पंडित के ढिग जाहीं। सुनि असलोक घोखीं मनमाहीं॥
निजपुर में करिके रमलीला। नाच के तब बन्हनी सिलसीला॥
तीस बरिस के उमिरि भइल। बेधलसि तब कलिकाल के मइल॥
नाच मंडली के धरि साथा। लेकर दीहीं कहिके रघुनाथा॥
बरजत ... बाप मतारी। नाच में तू मति रहऽ भिखारी॥
चुपे भागिकर नाच में जाईं। बात बना के दाम कमाईं॥
केहु सराहे केहु दूसे। केहु कहे 'जमाव अबहूँसे'॥
तनिको ना आवे गावे बजावे। काहे दो लागल लोग के भावे॥

× × ×

एह पापी के कवन पून से, भइल चहूँ दिसि नाम।
भजन भाव के हाल न जननीं, सबसे ठगलीं दाम॥

प्रथम भिखारी अपनी जन्म-भूमि की चौहद्दी इस प्रकार उपस्थित करते हैं—

बबुरा, डोकरिया, घुसरिया, कपूर दिअरा, इंगलिस सिरिसिया एकवना एक ग्राम हऽ।
चैन छपरा, सब्बलपुर, सूरतपुर, बन्धूछपरा, लगले बिसुनपुर, बिनगावाँ अस धाम हऽ।
दिअरा में देआल चक, चकिया महाजी पछिम, कोटवा महाल तामें करत अराम हऽ।
हाल के मोकाम गंगा सरजू के तट माहि, कहत चौहद्दी भिखारी हजाम हऽ।

× × ×

उत्तर खलपुरा महाराजगंज दरियागंज, डोरीगंज चिरान गढ़ मोरध्वज के जनावेला,
गंगा सरजू पार में अरार पर गुलटेनगंज, मौजे मखदूमगंज डेढ़ दू कोस पावेला,
सेरपुर, घेघटा रउजा धारू टोला तेलपा तक, दिअरा के बसिन्दा टोला नयका कहावेला
कहत भिखारी दास खास सहर छपरा ह, सटले नेवाजी टोला पद होइ जावेला॥

इसके अतिरिक्त भिखारी का कहना है कि उनका जन्म-स्थान एक चौमुहानी पर है, जहाँ से एक तरफ आरा, एक तरफ छपरा, एक तरफ बलिया और एक तरफ पटना है। अतएव उक्त स्थानों के प्रति भिखारी के विशाल हृदय में पूज्य भावना है। उनकी अभ्यर्थना भिखारी करते हैं और उन स्थानों का गौरव-गान सुनाते हैं। पहले छपरे का ही महत्व लीजिये। भिखारी कहते हैं—

हरि के बस्ती नइखे दूर। जिला छपरा में सोनपूर ॥
× × ×
सिलनिधि राजा सिल्होरी घर। बिस्वमोहिनी सुता जेकर ॥
× × ×
हरके घर हउए कसमर। गंगा गंडक संगम पर ॥
× × ×
छपरा सहर दहिआंव में, रहत दधीची बीर।
लेकर हाड़ धनुष बनल, भइल जनकपुर भीर ॥
× × ×
दोन दरउली द्रोनाचारज। सुमिरत सिद्ध होत सब कारज ॥
× × ×
कुम्हना कुंभज रिसि के ठांव। छपरा जिला में बाटे गांव ॥
× × ×
नगर जहँगीरपुर भरपूरा। हरिहर के जड़ भरत हजूरा ॥
× × ×
इनर इनरासन छोड़ि के, इनई कइलन बास।
मुरगा बोलल मुकंडेरा में, गौतम मुनि के पास ॥
× × ×
महाधीर के अंजनि मइया। छपरा जीला के रहवइया ॥
× × ×
छपरा छव पराजय कारी। सोचि के करम ऊपर नामधारी ॥
× × ×
तबसे धाम चिरान कहावत लगन चलल ललकारी ॥

छपरे में देवत्व का प्रतिपादन करके भिखारी बलिया में ब्राह्मणत्व की प्रतिष्ठापना करते हैं—

बलिया बरियारी से नाम। मालूम होता, कहत समान ॥
भिरगु कुल लेके अवतार। छतरी बंस के दिहलन मार ॥
से भिरगु आसरम बलिया जीला। परसुराम के कथा सुसीला ॥

और आरा तो जैसे दानव और मानव का युद्ध-स्थल रहा है। भिखारी के शब्दों में—

पहिल जुद्ध बगसर में भयऊ। से उछाड़ लंका चलि गयऊ ॥
× × ×
राम बान से संत निसंका। आरा आर पार गढ़ लंका ॥
गो द्विज संत मातु देवकारन। आरा आरन सागर पारन ॥
× × ×

आरा जिला मसाढ़ भवानी । बानासुर के हउ रजधानी ॥
सहसराम ह आरा जीला । परबत में रोहतास के कीला ॥

× × ×

सिरिगो रिसि रहसु सिंगहरिया । तबने जगहा हटे सेमरिया ॥

अपने गौरवशाली स्थान तथा पवित्र वातावरण का उल्लेख कर भिखारी अपने उन सहयोगियों की याद करते हैं, जिनके बल पर नाच-तमाशा में वे बड़े-बड़े जंग मारा करते थे—

बाबू लाल छोटन बाल भेरहुँ के जानत हाल,
ओसहीं महेन्द्र कुछ ध्रुपद के गवैया हवे ।
अजब रंग ढंग बा घिनावन के होलक में,
तरह - तरह ताल के तफजूल बजवैया हवे ।
सारंगी सरगम अलीजान के लागत नीक,
हव हरमुनिया के जगदेव बजवैया हवे ।
रामलछन जूठन के भिखारी बताय देत,
खास - खास हास रस नकल के करवैया हवे ।

भिखारी के आत्मीय मित्र का नाम श्री रामानन्द सिंह था । उनके सहवास में भिखारी का अधिक-से-अधिक समय बीता था और उनके साथ जो लीलायें हुई थीं, उनकी चर्चा भिखारी गौरव के साथ करते हैं—

रामानन्द में परउपकार । लरिकाई के मित्र हमार ॥
जिमिदारी के सेगा जिनिका । तनिको गर्व भइल ना तिनिका ॥
रामलीला गाँवें में कइलीं । साथे हाथ में गादा धइलीं ॥
आप सुकंठ बने हम बाली । साथे-साथ में ठोकलीं ताली ॥
जुद्ध भइल दंगल के माहीं । तनिको अमनख लागल नाहीं ॥

अपनी रचनाओं के भीतर कई बार भिखारी ने अपने सुहृद् बाबू रामानन्द सिंह की याद की है । यथा—

सुनीं बाबू रामानन्द सिंह कहत भिखारा ।

इसी प्रकार मरिचइया बाबा तथा रामलखन दास पर भी भिखारी प्रणीत गीत मिलते हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि संत-महात्माओं के प्रति उनके हृदय में पूर्ण श्रद्धा-भक्ति थी । हजाम, नाई अथवा ठाकुर होने के नाते एक पुस्तिका 'नाई बहार' लिखकर भिखारी ने अपनी जाति का गुण-गान किया है और यथासम्भव उन्नति की राह दिखाई है । 'दस गाज के जहिया खउर' तथा 'जजमनिका के नाऊ रेत ।'

स्थान, काल, वातावरण और जाति का गौरव दिखाकर भिखारी अपनी भाषा भोजपुरी का बखान करते हैं—

भोजपुरी बोली ह जबन। अछरि प परत बा तबन॥
तबने - तबने लिखत बानी। ना विद्या के हालत जानी॥
बिअरा जंगल के रहवइया। बकता हईं ना हईं गवइया॥

× × ×

माई जाति भिखारी नामा। चरचा चलल बा चाकर लामा॥

× × ×

झठो राम नाम कहला से। भोजपुरी भाषा गहला से॥
असहीं नाम फयलते जाता। रेडियो से कासी कलकता।

× × ×

बिना गाछ के लागल फल। घटा न लउकल बरिसल जल॥
जइसे बिना फउज के जीत। नजर परल बालू के भीत॥
असहीं करनी बाटे मोर। मातृभाषा के ह ई निचोर॥

भिखारी को अच्छी तरह ज्ञात है कि उनकी लोकप्रियता के मूल में भोजपुरी भाषा भी है। इस भाषा के माध्यम से भिखारी ने हिन्दुस्तान की नौ करोड़ जनता को भिक्षा देकर कृतार्थ कर दिया है। भोजपुरी का बड़ा-से-बड़ा विद्वान् भी भिखारी के समक्ष भाषा की मधुर भिक्षा लेने के लिए मुँह फैलाकर खड़ा है। तनिक भिखारी द्वारा प्रस्तुत 'विभावना' अलंकारों की झड़ी देखिये—'बिना गाछ के लागल फल', 'घटा न लउकल बरिसल जल', 'बिना फउज के जीत', 'बालू के भीत', आदि। यहीं पर भिखारी की समस्त कृतियों का उल्लेख कर देना आवश्यक है। भिखारी अपनी कृतियों की सूची इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

'बिरहा बहार' प्रथम मैं गावा। तब 'कलियुग बहार' सुधि आवा॥
'राधेस्याम बहार' हो गइलन। 'बेटी बियोग' के चरचा भइलन॥
'कलियुग प्रेम' हो गइलन पाछे। 'गबर घिचोरन' लगलन आछे॥
'भाई बिरोध' सोध के गवलीं। 'सिरी गंगा असनान' बनवलीं॥
'पुत्र-बध' पुस्तक परचार। तजबीज करिहऽ 'नाई बहार'॥
'ननद भौजी कर संवादू'। 'भाँड के नकल' के बुझऽ सवादू॥
बहरा बहार' के बरबस देखऽ। 'नवीन बिरहा' नीके परेखऽ॥
भइल 'भिखारी नाटक' जारी। जे में नकल बा चारि प्रकारी॥
तब 'भिखारी संका समधाना'। साथे-साथ कर सुनहु बखाना॥

ओहि 'अवसर भिखारी हरिकीर्तन' । प्रेम लगाइ कर करिहउ निरतन ॥
'जसोदा सखी संवाद' सुहावन । तब 'भिखारी चौपुगी' पावन ॥
छपल 'भिखारी जय हिंद खबर' । विकरा के नेग सराध में जबर ॥
तब 'भिखारी पुस्तिका सूची' । खरिदनहार के जइसन रुची ॥
पुनि भिखारी पउबरन पदवी । 'विधवा विलाप' के मनिहउ अदवी ॥
पढ़उ 'भिखारी भजन माला' । 'बुढ़माला' के छपल बा हाला ॥
'राम नाम माला' पढ़ि लीजे । 'सीता राम मे परिचय' कीजे ॥
'नव अवतार' कहाला नर के । एक 'आरती' दुनिया भर के ॥

'मातु भक्ति' 'श्री नाम रतन', जगह-जगह पर मान ।
सब पुस्तिका समूह में, दीहल बा परमान ॥

उक्त अनेकानेक पुस्तिकाओं का प्रणेता जनता के बीच अनेक रूपों में प्रतिष्ठित है। कौन किस रूप में भिखारी को याद करता है, भिखारी जानते हैं और उसे वे इक की चोट घोषित करते हैं—

नाम भइल बा बहुत दूर ले, नाच के लबारी में,
केहु जपत बा गाय चरावत, केहु जपत बनिहारी में,
× × ×
केहु जपत बा हम ना देखली, ऊपर भइल बुढ़ारी में,
भोजन करत में बालक सुमिरत, भात दाल ले थारी में,
केहु जपत बा चाउर तउलत, केहु जपत मनिहारी में,
केहु जपत बा सेम साग में, भटा तुरत कोड़ारी में,
× × ×
केहु जपत बा आम गाछ प, केहु जपत बगवारी में
× × ×
केहु जपत बा परिहथ धइले, जोतत खेत बधारी में,
× × ×
केहु जपत बा हथदल, पथदल, मंदिर केहु अटारी में,
केहु जपत बा जतरा कइके, बइठल रेल सवारी में,
× × ×
केहु जपत बा लोग फँसवलसि टिकुली चोली सारी में,
केहु जपत बा दरसन कइलीं, पाप गइल धोतसारी में,[1]
× × ×

[1] भिखारी के इन पद में श्री अवधेश प्रधान को विराट् की वन्दना का भ्रम है। अतः उनकी कल्पना-शक्ति का मैं कायल हूँ। —लेखक

कहत भिखारी नाई, घर बा कुतुपुर में भाई, जेकर नाम भइल बाटे बहुत दूर।

श्री जैनेन्द्र कुमार ने प्रेमचन्द के विषय में लिखा है—'प्रेमचन्द जी हिन्दी के सबसे बड़े लेखक हैं, हम हिन्दी भाषा-भाषी उनके मूल्य को ठीक आँक नहीं सकते। हम चित्र के इतने निकट हैं कि उसकी विविधता, उसका रंग-वैषम्य हमें आछन्न कर देता है, उसमें निवास करती हुई एकता हमारी पकड़ में नहीं आती। जो एकाध दशाब्दि अथवा एक-दो भाषा का अन्तर बीच में डालकर देखेंगे, वे मेरा अनुमान है, प्रेमचन्द को अधिक समझेंगे, अधिक सराहेंगे। वर्तमान की अपेक्षा भविष्य में और हिन्दी को छोड़कर जहाँ अनुवादों द्वारा अन्य भाषाओं में पहुँचेंगे, वहाँ उनको विशेष सराहना प्राप्त होगी।' भिखारी को अपने विषय में कुछ ऐसा ही अन्दाज था—

अबहीं नाम भइल बा थोरा। जब ई छूटि जाइ तन मोरा।"

× × ×

"तेकरा बाद नाम हो जइहन। पंडित कवि सज्जन जस गइहन।"

नइखीं पाट पर पड़ल भाई। गलती बहुत लउकते जाई।

पटहा कवन अनमोल ?

'हिन्दी' भाषा विशेषतः दिल्ली के आस-पास बोली जाती है। सामान्यतः देखा जाय तो 'हिन्दी' बंगाल और उड़ीसा को छोड़कर समस्त उत्तरी और मध्य भारत की भाषा है। गुजरी बुन्देलखण्ड में पहुँचकर यही हिन्दी बुन्देली का रूप ग्रहण कर लेती है। अम्बाले से आगे बढ़ जाने पर इसका रूप पंजाबी का हो जाता है। गुड़गाँव और दिल्ली के दक्षिण-पूर्व में यही 'ब्रजभाषा' बन जाती है। तात्पर्य यह कि प्रदेश-भेद के कारण 'हिन्दी' के भिन्न-भिन्न स्वरूप और नाम होते गए हैं। भिन्न-भिन्न राज्यों के ग्रामों में हिन्दी के अनेकानेक रूपान्तर आज भी अपने प्राकृत रूप में हैं। उदाहरण-स्वरूप भारत की प्रान्तीय भाषाएँ हैं अथवा 'हिन्दी' के रूपान्तर हैं—बुन्देली, बघेली, हरियाणी, ब्रज, अवधी, छत्तीसगढ़ी, मारवाड़ी, मेवाती, मालवी, जयपुरी, मगही, मैथिली, भोजपुरी, आदि। जबतक खड़ी (बोली) हिन्दी का स्वरूप परिष्कृत नहीं हुआ था, तबतक भारत की उल्लिखित लोक-भाषाएँ ही काव्योपयोगी थीं।

उन गँवारू-सी लगनेवाली भाषाओं में एक से बढ़कर एक सुन्दर और सफल रचनाएँ उपलब्ध हैं। आज हिन्दी साहित्य में हम 'पृथ्वीराज रासो, 'पद्मावत' 'सूरसागर', 'रामचरित मानस' जैसे अनूठे काव्य प्रस्तुत देखते हैं। इनकी पृष्ठभूमि में भारत की अनेक ग्रामीण भाषाएँ ही हैं। कबीर, विद्यापति, मीरा के भाव-भीने गीत भी ग्रामीण भाषाओं से मिश्र भाषा की देन नहीं। ये मधुर अथच कोमल भाव-प्रवण भाषाएँ हमारे कवियों की जबान में अन्न-जल के साथ इस प्रकार घुल-मिल गई थीं कि वे जो कुछ भी बोलते थे, उसमें कविता का ही रस लहरा उठता था। इनकी रचनाओं को देखने से स्पष्ट पता चलता है कि उन्हें कविता रचने में तनिक भी प्रयास नहीं करना पड़ता था। अतः प्राचीन हिन्दी-साहित्य पद्य-काल के ही नाम से घोषित किया गया है। वस्तुतः बोलचाल की ग्रामीण भाषा में मानव का एक प्रकार का संस्कार लिपटा होता है, जिसके सहारे कठिन-से-कठिन विषय भी सरल-सुबोध बन जाता है। हृदय की वास्तविक अनुभूतियाँ एवं जीवन के हर्ष-विषाद वस्तुतः ग्रामीण भाषाओं में ही सहज भाव से मुखर हो पाते हैं; तभी तो गर्व के साथ घोषणा की गई है—

गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहिं सुनहिं सुजान ।

स्पष्टतः 'भोजपुरी' भाषा का तो इतना विस्तार रहा है कि हिन्दी-साहित्य का कोई ऐसा प्राचीन काव्य नहीं, जिसपर 'भोजपुरी' की छाप न हो। कमी इतनी ही थी कि उसका अपना कहा जानेवाला न कोई कवि था और न स्वतन्त्र रूप से काव्य ही। आज 'भोजपुरी' बोलनेवाली जनता की संख्या सौ करोड़ के आस-पास है। उसका कवि भिखारी भी हिन्दी-साहित्य के प्रमुख कवियों के समक्ष हीन नहीं। भिखारी ने विभिन्न शैलियों में अपनी रचनाएँ कीं और यह सिद्ध कर दिखाया कि भोजपुरी में मार्मिक, वर्णिक अथवा गीतात्मक सर्वविधा के काव्य अनायास लिखे जा सकते हैं। 'बिरहा बहार प्रथम मैं गावा' से पता चलता है कि भिखारी की पहली रचना 'बिरहा' से प्रारम्भ हुई और यही उनकी पहली रचना है। आगे चलकर उन्होंने 'नवीन बिरहा' का भी सर्जन किया है। बिरहे में धोबी और धोबिन का संवाद (डायलॉग) रखा गया है, जो बड़ा ही रुचिकर प्रसंग है और है बड़ा ही रहस्य-भरा।

धोबी—जय माई कलकत्ता में धाम कइलू, हमरा पर होखऽ सहाय।
कहे भिखारी धोआई पसन परी, सबका से धन धन कहाय॥

धोबिन—जय जय मनाईं माई कमलाजी, कइलू गोहारी में बास।
कहे भिखारी धोआई में दाग रही, तबहूँ करा दोहू पास॥

भिखारी की रचना की प्रथम पंक्ति होने के कारण उल्लिखित बिरहे का अधिकाधिक महत्व है। कहा जा चुका है कि भिखारी शाक्त थे। शाक्त होने के नाते वे माँ के दो स्वरूपों का स्मरण करते हैं :—काली माई और कामाख्या माई। दस महाविद्याओं में उन दोनों का स्थान है। स्थान की दृष्टि से काली माई का स्थान दस महाविद्याओं में प्रथम है और कामाख्या माई का स्थान तीसरा है। मगर कुमारी रह जाने के कारण कामाख्या इक्यावन सिद्ध पीठों की अधिष्ठात्री देवी हैं। इन जगद्धात्री महामाया के अधिकार में ही सारी सृष्टि है। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश भी कामाख्या के चरणों के निकट लोट रहे हैं। भिखारी का कथन है कि माँ काली की कृपा हो जाय, तो धोआई पसन परी' और संसार में वाहवाही मिल जाय और माँ कामाख्या की ओर घूम जाय तो जिन्दगी का दाग ही उड़ जाय। इसी प्रसंग में नवीन बिरहे भी प्रस्तुत हैं :—

औरत—ओह धोबी के सुमरिन करऽ, जो करत धोआई नीत।
ग्यान गंगा में कलिमल धोके, चले जगत से जीत॥

अहं गरम करे सन्तोख के भठी सत के साबुन लाय।
नाद उहे जो सउनन करे, सबके घर के खाय॥

भिखारी द्वारा प्रस्तुत धोबी का 'रूपक' विचारणीय है। पहुँचे हुए संत ही दुनिया के जीवों के लिए धोबी है। वे अपनी वाणी की नित्य ही धुलाई करते हैं। ज्ञान-रूपी मंदाकिनी में वे कल्पित्व के मैल को धो डालते हैं। उनके पास सत् का साबुन (धोने का साधन) होता है। सर्वप्रथम वे आत्मा को सन्तोष रूपी भट्ठी में गर्म करते हैं। ऊपर से सत् का साबुन मल देते हैं। अनहद नाद की झंकार जहाँ हो रही है, वहाँ पर प्राणों को ले जाकर वे कलेवर के मैलों को साफ करने के लिए 'सउनन' करते हैं। 'सउनन' धोबियों की एक प्रकार की क्रिया का नाम है। गंदे कपड़ों को एक बड़े नाद (मिट्टी के बर्तन) में सोडा-साबी इत्यादि साफ करने-वाले मसाले देते हैं और कपड़ों को उन मसालों में तर कर देते हैं, सान देते हैं। इस प्रकार संतों पर दुनियाँ की गंदी आँच नहीं लगने पाती। वे अन्त में शान के साथ 'चलें जगत से जीत'। अब दूसरा 'रूपक' लीजिये—

औरत—जाति काम सब केहू छोड़ि देत आपे, छोड़ि दऽ धोअलका के नेम।
खेत छोड़ऽ खेत करऽ बोअऽ तरकारी फरऽ, हाट में बेचबि साग सेम॥

मर्द—कोइरी धोवन साग के, धोवतऽ तमोली पान।
जजमनिका पुरोहित धोवत, करमकांड के ग्यान॥

धुलाई के पेशे से एक दिन परेशान होकर औरत दूसरा पेशा अख्तियार करने का प्रस्ताव पति से करती है। इस पर पति समझाता है कि धुलाई से तो कहीं छुट्टी ही नहीं है। औरत का प्रस्ताव है 'हाट में बेचबि साग सेम।' अर्थात् कोइरी का काम किया जाय। खेत में तरकारी, फल उपजाया जाय और उसे बाजार में बेचा जाय। मर्द का कथन है कि तरकारी भी खेत से निकाल कर यों ही नहीं बाजार में बिकेगी, जब तक सेम-साग को धोकर साफ सुन्दर नहीं बना दिया जायेगा। धुलाई से छुट्टी किसे है? हर विषय में सफाई की आवश्यकता है। अतः सभी धोबी हैं, चाहे कोइरी हो चाहे पनेरी चाहे पुरोहित। धुलाई का एक प्रश्नोत्तर और लीजिये—

प्रश्न—केइ धोवेला साल दुसाला, केइ धोवेला अन्त।
केइ धोवेला चाम धामको, बेगि बतावऽ कन्त॥

उत्तर—धोबी धोवेला साल दुसाला, धोवत अन्त फकीर।
बेस्या धोअत चाम धाम को देत भिखारी नजीर॥

संसार के सभी व्यापारों में सफाई अनिवार्य है। कहा गया है कि जहाँ सफाई है, वहाँ ईश्वर का निवास है—Cleanliness is next to Godliness. यही सफाई जीवन के साथ उसके अन्तिम क्षणों तक जरूरी है। कपड़ों की धुलाई तो धोबी करते ही हैं। शारीरिक सफाई और सजावट वेश्या करती है। अपने अन्तिम

दिनों के लिए आत्मा की सफाई सम्त करते हैं। सन्त अपने अन्तिम दिन को याद रखते हैं और इससे वे किसी गन्दे कार्य में नहीं रमते। आत्मा को स्वच्छ और पवित्र बनाए रखते हैं। अतः संत महान् धोबी हैं। भिखारी का यह 'नजीर' सर्वसाधारण को हृदयंगम करने लायक है। पुनः रहस्यमय प्रश्नोत्तर देखिये—

प्रश्न—अवरु भेद कहि कहि समुझा दऽ तनि होई मनवा में बोध।
हमरा से तोहरा बनाव रही सभ दिन, छूटि जाई सकल विरोध॥

उत्तर—धोबी घर-घर के नरक बिटोरि के, साफ कइ-कइ के देत।
घास बिना ओस का सोभे? जिनि किसान के खेत॥

धोबी का यह महान् कार्य स्तुत्य है। वह घर-घर का मल (नरक) बटोरता है। अपने श्रम और परिश्रम द्वारा उसे साफ करता है। पुनः सबके घर जाकर साफ वस्त्रों को पहुंचा देता है। यह कार्य कुछ उसी तरह का है, जिस प्रकार किसानों का कार्य। किसान अपने खेत से एक-एक घास को चुन लेता है और उसे साफ करके खेत को स्वच्छ बना देता है। ओस की शोभा घास को लेकर है। मगर आत्मा की शोभा न्यारी है। आत्मा में कोई मैल नहीं। यह निर्मल है। अन्त में, भिखारी लिखते हैं—

प्रश्न—कवन दोसलवा धोआला कवना जलवा में, पटहा कवन अनमोल
धोबी के ह कवन पहचान तनि अबकी बजा के कहऽ ढोल॥

उत्तर—ग्यान गंगा में आतमा कपड़वा नयन भीतरवा के खोल।
पटहा के परहेज जानिलऽ, साबुन सरवत घाटे ओल॥

सइया पटकत बानी साथ !

भिखारी ने सचमुच बड़ा ही विशाल हृदय पाया था। उनके हृदय में भेद-भाव का लेश नहीं था। सबके प्रति आदर था सम्मान था। उनकी 'नाच मंडली' में हिन्दू-मुसलमान दोनों को समान आदर प्राप्त था। हेय और घृणा की दृष्टि किसी के प्रति भिखारी नहीं रखते थे। उन्होंने सारत: भक्त-हृदय पाया था। उनकी भक्ति में किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं थी उदारता थी। उपासना के प्रकारों को लेकर, भक्ति की पद्धतियों को लेकर, वे किसी चक्कर में नहीं थे। किसी कट्टरता में नहीं थे। उनके लिए सभी मत सम्मान्य थे, आदरणीय थे, क्या निर्गुण—क्या सगुण ?

सगुणोपासना में भी उनके सामने कोई बम-बखेड़ा नहीं था। शैव, शाक्त और वैष्णव सबका वे रहस्य जानते थे। उनकी अभेद-बुद्धि में सबका समाधान हो-चुका था। अत: किसी देवी-देवता से उन्हें चिढ़ नहीं थी। सबके प्रति पूर्णरूपेण भक्ति थी। रुद्रावतार मारुति को लीजिये। भिखारी जानते थे कि बिना हनुमान को गुहराये भक्ति में पदार्पण नहीं हो सकता; क्योंकि हनुमान का आसन सभी दरबार समान रूप से सबसे आगे ही लगा हुआ है। किसी भक्त का कोई कार्य कर देना मेंउरके बायें हाथ का खेल है। भिखारी गुहराते हैं—

महावीर जी राखऽ लाज। बिगड़ल सकल सँवारऽ काज॥

राम-भक्त हनुमान की वन्दना करके भिखारी राम दरबार में प्रवेश पा जाते हैं तथा राम की ललित लीलाओं का दिग्दर्शन करते-कराते हैं। साहित्य में भिखारी का राम-विग्रह-वर्णन अपना एक वैशिष्ट्य रखता है। उस वर्णन में भिखारी राम के किसी अनन्य भक्त से कम नहीं हैं। कथा-खण्ड के सिवा उनका अपना आत्म-निवेदन; जिसे अर्जी कहा जा सकता है, कम जोरदार नहीं है—

ए रघुवर, चरन कमल बलिहारी।
गनिका अजामिल गीध, सुपचो के कइलऽ सीध, हम तू अधम उधारी।
ताड़िका सुबाहु मारी, तरल गउतम के तारी, गइलऽ जनक फुलवारी।

राम का व्यक्तित्व 'अधम-उधारन' और पतित-पावन ही रहा है। जो उनके पास गया अथवा जिसके यहाँ वे गये, उसी के हो गये। 'पुनि सुकंठ सोई कीन्हि

कुचाली', 'सोइ करतूति विभीषन केरी'; मगर राम ने स्वप्न में भी उनके ऊपर ध्यान नहीं दिया।

दशरथ-सुत 'राम ब्रह्म चिन्मय अविनासी' है। कलाविद् कहते हैं, बारह कलाओं के अवतार हैं। सोलहों कलाओं से युक्त है—कृष्ण। कृष्ण-लीला का गान करने के लिए भिखारी ने दो पुस्तिकाओं का प्रणयन किया है। भिखारी की कृष्ण-भक्ति के परिचय में मुझे यही निवेदन करना है कि वे कृष्ण-लीला के नाट्य प्रदर्शन में स्वयं गोपी का पार्ट करते थे और यशोदा के पास कृष्ण के व्यवहारों की उलाहना सुनाते थे। उनका वह स्वांग जिसने देखा है, जीवन में भूल नहीं सकता। कृष्ण-भक्ति में भिखारी एक रंगकर्मी (पार्ट अदा करने वाले) कलाकार तथा अध्यात्मवादी भी है। कृष्ण-प्रेम की उनकी आध्यात्मिकता देखने ही लायक है। भिखारी कहते हैं—

मम हिय परबत कानन गाछी। तेहिके मध्य चरावहु बाछी॥

कृष्ण-भक्ति का ऐसा आध्यात्मिक भाव अन्यत्र दुर्लभ है। वास्तविक भक्तों के निकट भेद-दृष्टि नहीं होती। जो कृष्ण हैं, वही राम हैं। राम की श्रीमुख वाणी है—'संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास' मुजरिम है, अपराधी है, दण्ड का भागी है। रामोपासक तुलसी ने राम और शिव में अभिन्नता दिखाने के लिए अनेक बार इस प्रश्न को उठाकर समाधान किया है। राम के ही मुखारविन्द से कहलवाया है 'सिव द्रोही मम दास कहावै' मंजूर नहीं। भिखारी शिव-भक्ति के सिलसिले में लिखते हैं—

हरदम बोल सिव बम बम बम बम।
कर त्रिसूल बसहा पर संकर, डमरू बजत बा डम डम डम डम।
मुँह में पान न भाँग चबावत, दसन बिराजत बा चम चम चम चम।
पुरवासी निरखन बर लगे, नारी पुरुस सब खम खम खम खम।
नाई भिखारी कहवि कब तक ले ? जबतक रही तन दम दम दम दम।

'भिखारी निपढ़ नाउ नदान' का उद्धृत पद हिन्दी-साहित्य के महान कवियों के पद से टक्कर ले रहा है, प्रसाद और माधुर्य में। इस एक ही पद के द्वारा शिव का स्वरूप, शिव की वृत्ति तथा शिव-विवाह की झाँकी समुपस्थित हो जाती है। शिव-भक्ति तो इतनी प्रगाढ़ झलकती है कि 'जब तक रही तन दम दम दम दम'। शिव स्वरूप में ही सारी शक्तियों का संचय हो जाता है। सिर में एक शक्ति का निवास है, जिसका नाम गंगा है। गंगा से एक क्षण का भी विछोह भिखारी को असह्य है। कुछ गंगा-भक्ति की बानगी लीजिये—

(क) गंगा मइया जनम जनम दीह दरस तरस बाटे सांझ भोर हो।
(ख) जब जब होले जनम जोनी श्रवन करम, ए मोरी गंगा जी हो,
तहाँ तहाँ दीह तू दरसन ए मोरी गंगा जी हो।
(ग) मरते के बेर सामी, अतना करीह जरूरी।
मुँह में परे गंगा जी के जल.....

भिखारी की गंगा-भक्ति की भावना कुछ उसी प्रकार की है, जिस प्रकार की 'जेहि योनि जनमउँ कर्मबस तहँ राम पद अनुरागऊँ।' शिव-परिवार से अलग गणेश भी नहीं है। मंगलाचरण की परिपाटी के अनुसार भिखारी ने उन्हें सदा सर्वदा, यत्र-तत्र-सर्वत्र याद किया है। क्या ग्रंथारम्भ हो क्या कोई अहित विषय हो, भिखारी चट गणेश को बैठा देते हैं—

(१) श्रीगनेस के चरन के आसा। श्रीगनेस के लागीं पाँव।
(२) श्रीगनेस के चरन में, नावत बानी सीस
(३) पद में गौरी के लाल, गिरत बा हमार भाल.....
(४) श्रीगनेस महादेव भवानी।
(५) गौरी गनपति होखऽ सहाई। सारद बसहुँ हृदय में आई॥

आप कहेंगे कि भिखारी की इष्टोपासना किस देवी या देवता के प्रति थी? उत्तर में निवेदन यह है भिखारी वस्तुतः 'शाक्त' थे। शक्ति के अनन्य भक्त थे; मगर अन्यान्य देवताओं से वे परहेज नहीं रखते थे। शक्ति-मार्ग में दीक्षित होने के लिए उन्होंने बाकायदे अपना एक गुरु बनाया था। उन गुरुदेव भगवान् के प्रति भिखारी ने अपने हृदय के ऊँचे-से-ऊँचे भाव उड़ेल दिये हैं। देखिये भिखारी का गुरुद्वारा—

रामपुर एक गाँव बा, जहाँ गुरु के धाम।

× × ×

श्रीगुरु द्वारा पूरब ओर। जहाँ बहे सोन भदर जोर॥
ओकरा पूरब गढ़ी मनेर। ओकरा पछिम आधा सेर॥
ओकरा उत्तर गंगा धार। संगम बा अघनासन हार॥
से ही आश्रम गुरु जी बानी। देलीं मंतर बीज भवानी॥

भिखारी ने अपनी पुस्तिकाओं में सहर्ष अनुमोदन किया है 'हई इष्ट मोर आदि भवानी' तथा 'आदि भवानी आस पुराव'। देवी के सभी स्वरूपों को तत्वतः एक समझते हुए उन्होंने बारम्बार पुकारा है—'देवी दया कर मन लाई' 'काली कंठ पर होख सहाय' तथा 'कहलू गोहाटी में बास', "जय काली कलकत्ते वाली बगदल दाहा

सुधार'। माँ काली की दया से रात भर में ही महामूर्ख कालिदास विद्वान् बन गये थे, यह बात भिखारी की जानकारी में थी।

एक बार भिखारी मुझसे मिलने के लिए आये थे और अपनी समस्त कृतियाँ भी लेते आये, भेंट देने के लिए। उसी मुलाकात में उन्होंने अपनी एक गोपनीय बात मुझसे कही। एक रात की बात है कि भिखारी आधी रात में ही गंगा-स्नान के लिये चल पड़े। गंगा तट पर माँ के साक्षात् दर्शन हो गये। भय के मारे वे भाग रहे थे कि माँ ने उन्हें आशीर्वाद प्रदान किया और अभय किया।* यही वह शक्ति थी, जिसके बिना शिव भी शव हैं। उस शक्ति के सामने भिखारी इस प्रकार समर्पित है—

जय जय मातु सुनहु पुकार।
उर्वशिसी जग जननी के, सजल अजब सिंगार।
भुज बिराजत खर्ग खप्पर, रहत सिंह सवार।
करत भक्षन मांस, सोनित हरत धरनी भार।
लाल लहँगा जड़ित सारी तेल सेनुर हार।

अंतः उन्हीं जगदम्बा के चरणों में मेरा कोटिशः प्रणाम है भिखारी के ही शब्दों में,

'महया पटकत बानी माथ' आदि भवानी चरन में तोहरा।

●

* माँ के मिलने के पश्चात् एक बार एक कोढ़ी तथा एक विचित्र प्रकार का कुत्ता भी भिखारी के पास आया था, जिसका समुचित सम्मान उन्होंने किया था।
—लेखक

राम कहऽ सुगवा !

बात तो यह है कि उस परमपिता परमेश्वर के रूप और नामों का ठिकाना नहीं है। रह गया भक्त, आराधक या साधक चाहे वह जिस रूप या नाम के द्वारा अपनी भक्ति या साधना करे। नामोच्चारण अथवा कीर्तन-भजन के लिए सदा से 'राम नामेदं सर्वेषामुत्तमोत्तमम्।' यह कोई मुँह की लम्बी-चौड़ी बात ही नहीं है। असलियत यह है कि इस अनमोल मानव शरीर में 'आत्मा तेषु च सर्वेषां राम-नाम प्रकाशकः।' सुतरां हमें स्वीकार करना पड़ता है 'सहस्र नाम तत्तुल्य राम-नाम वरानने।' सभी प्रकार के भक्तों की राम-नाम, सचित निधि है और अक्षयकोष है। बिना राम-नाम का गुण गाये किसी प्रकार के भक्त की आराधना ही पूरी नहीं होती। भक्त किसी देव का हो, भक्ति किसी देवी की हो' मगर राम-नाम के भजन से तटस्थ रह जाना उस भक्त के लिए असम्भव प्राय है हिन्दी-साहित्य के भक्ति काल में जबसे महात्मा कबीर ने 'राम-नाम की लूट' की, तब से नानक, दादू, रैदास, धना, पीपा प्रभृति असंख्य प्रेमी भक्तों ने जी खोलकर उस अनमोल राम-नाम रूपी धन-राशि का सञ्चय किया। कृष्ण-भक्त सूर तो 'राम-नाम धन' पाकर कृतकार्य हो गये और भक्तिमती मीरा 'राम-नाम धन' से कृतार्थ हो गईं। तुलसी तक आते-आते बचे-खुचे सभी 'औंधरो अधम जड़ जाजरो जरा जवन' राम-नाम के द्वारा उन्मुक्त हो गये, पावन हो गये, धन्य हो गये।

स्व० आचार्य शुक्ल ने अपनी निष्ठा को यों व्यक्त किया है—'हमने चौड़ी मोहरी का पाय-आमा पहना आदाब अर्ज किया, पर 'राम-राम' न छोड़ा। अब कोट-पतलून पहनकर 'डैम नान्सेन्स' कहते हैं, पर घर में आते ही फिर वही 'राम-राम।' भक्त-भिखारी की कृतियों में राम-नाम की महिमा तथा महत्त्व बखान करनेवाले कम से-कम इतने पद हैं, जिन्हें यदि संकलित कर दिया जाय तो 'विनय-पत्रिका-सा' दो ग्रन्थ बन जायें। भिखारी के राम-नाम-भजन में खूबी यह है कि भजन के साथ कर्म का सामञ्जस्य है। अलौकिकता के साथ लौकिकता है। उनका भजन 'अजगर करे न चाकरी' सा निश्चेष्ट नहीं है। भिखारी राम-नाम का उपदेश देकर दुनिया को आलसी-अपाहिज नहीं बनाना चाहते। उनका कथन है—

राम राम कहि के उद्यम में लटना। छपरा में रहऽ चाहे आरा चाहे पटना॥

जगत् के कर्म तो करने ही पड़ेंगे। कर्मों से छुट्टी कहाँ है? हो ही कैसे सकती है? चाहे हँसकर कीजिये, चाहे रोकर, कर्म-क्षेत्र में कर्म करना ही है। यह संसार कर्मक्षेत्र है। अकर्मण्य अर्जुन को गीता द्वारा कर्म का ही पाठ पढ़ाया गया है। भिखारी का कथन है कि राम-नाम का मुकाम बनाकर, एक केन्द्र-बिन्दु बनाकर कर्म में रत रहिये। इस केन्द्र-बिन्दु की ऊँचाई उस स्तर पर पहुँच जाय कि स्वतः 'स्वासा में राम राम सुनला में राम' आने लगे। इस स्तर पर पहुँचने के लिए अभ्यास प्रैक्टिस) के सिवा दूसरा कोई विधान नहीं है। भिखारी बताते हैं—

(क) जपन कर राम नाम मनि माला।
राम राम बइठत उठत में, ऊँचा चढ़त चाहे खासा॥

(ख) असहूँ हँसहूँ तमसहूँ, गढ़तहूँ गदरसहूँ राम।
कहे भिखारी रसहूँ अरसहूँ, जसहूँ अजसहूँ तमाम॥
सूनत गूनत चूनत बिधुनत, राम नाम कह जोव।
कहत भिखारी मन मंदिर में ईंधन जोगवत सोव॥
खावत गावत पान चबावत, साज बजावत राम।
कहत भिखारी एहो नाम से, बनि जइहन सब काम॥

यही वह राम-नाम-मनि है जिसे तुलसी ने 'जीह देहरी द्वार' पर रखा है। भिखारी के उपर्युक्त पद देखकर सुन्दरदास की पंक्तियाँ याद हो आती हैं – 'बैठत रामहि उठत रामहि, बोलत रामहि राम रह्यो है।' 'असहूँ हँसहूँ तमसहूँ' इत्यादि 'अनुप्रास' की बहार तो देखने ही लायक है। 'बिधुनत' भोजपुरी का टकसाली शब्द है। यह चीड़-फाड़कर टुकड़े-टुकड़े करने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'रसहूँ अरसहूँ' बरबस ध्यान ले जाता है—

जो मोहि राम लगाते मीठे।
तो नवरस षटरस रस अनरस, ह्वै जाते सब सीठे॥

भिखारी भी दुनिया की सारी रंगीनियों को 'राम नाम चटनी' के सहारे उदरस्थ कर लेना चाहते हैं। रुचिकर भोजन कौन नहीं चाहता? ऐसा कौन जीव है, जो अपने शरीर को स्वस्थ और सुन्दर नहीं बनाये रखना चाहता? सच तो यह है कि शरीर को उत्तमोत्तम तौर से निर्वाह करने ही के लिए जगत् का सारा कार्य-कलाप है। भिखारी उन केवल शरीर-पोषक व्यक्तियों को चेतावनी देते हैं—

सुतला से उठिकर गइबऽ पयखनवा। मुँहवा हुराये लागल लेके दतुवनवा॥
निसिरो मरिच फँदा करी होता जलपनवा। धरो भरके खेल बाटे बनत बा भोजनवा॥
चाभत बाड़ऽ घीव, दूध, पाकल पता पानवा। राम कहऽ राम कहऽ राम कहऽ मनवा॥

भिखारी लौकिक दृष्टिकोण सामने रखकर राम-नाम के महत्त्व का प्रतिपादन करते हैं। संसार में कुछ ऐसे जीव भी है, जिनकी सारी जिन्दगी दैनिक क्रिया तथा खाने-पहनने (भोग विलास) में ही बीत रही है, बीतती जा रही है। फिर भी विषय-वासना की भूख मिटती नहीं। अमिट विषय-पिपासा शान्त नहीं होती—'बुझै न काम अगिनि तुलसी बहु विषय भोग रस घी ते।' भिखारी अतृप्त तृष्णा और शाश्वत कमी को राम-नाम के प्रयोग द्वारा मिटाना चाहते हैं, तथा जिन्दगी में अमृत भर देना चाहते हैं। वे भविष्य के घृणास्पद स्वरूप का उद्‌घाटन करते हुए कहते हैं—

चार दिन के सेखी बा त होखत बा टीठोरवा।
नाक ना पोंछाई नेटा गिरी लावड़ तोरवा॥

× × ×

बनल बा जवानी तबले करत बाड़S माजावा।
थाकला पर दाँत से ना टूटी नरम खाजावा॥

× × ×

लरिका बजा के भागी थपरी के बाजवा।
गावत भिखारी नया गीत के तरजवा॥

सचमुच, केवल तर्ज ही नया नहीं है। प्राचीन पुरातन हिन्दू संस्कृति में में भी चिर नवीनता भरी हुई है। जीवन के सभी क्रिया-कलापों के साथ राम-नाम का सामञ्जस्य करके उपदेश देनेवाला अभीतक भिखारी को छोड़कर दूसरा कोई उपदेशक नहीं आया। ऐसा कोई भी उपदेशक नहीं आया जो हमारे नित्य के कर्मों का सूक्ष्म निरीक्षण करके उन्हें हेय बतावे और शनैः शनैः हमारी गति-विधियों को भगवत्-प्रीति की ओर मोड़ सके। उस कवि का कथन अक्षरशः सत्य है—'लड़कपन खेल में खोया, जवानी नींद भर सोया, बुढ़ापा देखकर रोया।' बुढ़ापा की तैयारी सम्भवतः भिखारी ने उसके दयनीय चित्र को देखकर ही, की थी। बुढ़ापे के दर्दनाक चित्रों को खोजिये। भिखारी कहते हैं—

(क) धन देख के नाचत बाड़S जइसे थिरके मोरवा।
अन नाहीं पचो तन होई कमजोरवा॥
मने मन गाजत बाड़S भइलों लरकोरवा।
बबुआ के बोली लागी पथल से कठोरवा॥

× × ×

रूप देखि के भुलल बाड़S काला साँवर गोरवा।

(ख) राम कहऽ राम कहऽ मन बयपारी।
देखत बाढ़ऽ हाथी घोड़ा जगह जिमिदारी॥

× × ×

बूधपन होई तन बेटा के नारी।
बावाँ हाथे ठेल दी अग्हरवा घर में थारी॥

× × ×

थाक जाई देह चाम होई ठकठोना।
नाँव परी डोसर पुकार के भकोला॥

बुढ़ापा ऐसी बला है कि उससे मात्र स्वरूप ही नहीं बदलता अपितु नाम भी बदल जाता है। किसी भी बूढ़े को देखकर अबोध शिशु ताली बजाकर चुटकी लेते हैं और उसे 'भकोल' कहकर पुकारते हैं। 'भकोल' सा रूप जो बन जाता है। केशव तो 'बाबा' नाम से ही चिढ़ गये थे, क्योंकि राजदरबार के कवि के लिए इतना अपमान कम नहीं था। दर असल युवाकाल ही सभी प्रकार के कर्मों का केन्द्र है। कहते हैं—कोई सज्जन भक्ति-पथ में अबेर के भय से सबेरे ही जुट गये थे। जब तक शरीर स्वस्थ है तभी तक 'डिसाइन' पथ का भी अभ्यास हो सकता है। जीवन के अन्तिम पक्ष में तो यही होता है—'माया मिली न राम'। शायद इसीलिए किसी ने याचना की है—'दो मृग नयनी कि दो मृग छाला!' यदि 'मृगनयनी' न मिली (यद्यपि कि वह नश्वर ही है), तो शाश्वत मृगछाला ही श्रेयस्कर है। अतः बुढ़ापे की भक्ति तो—'हारे को हरिनाम' एक विवश अवस्था है। तब जायेंगे कहाँ? लाचार होकर आना ही है इसमें। भिखारी अर्ज पेश करते हैं—

पिअऽ राम नाम रस घोरी, ए मन इहे अरज बा मोरी॥

× × ×

सँपरत बीति गइल चौथापन लागी तीरथ में डोरी।
लालच में एको ना कइलऽ देह भइल कमजोरी॥

सारी कठिनाइयों और सारे बखेड़े की जड़ है मन। आजतक जितने भी सन्त महात्मा अथवा ज्ञानीजन हुए हैं सभी ने एक स्वर से मन-निरोध का आदेश दिया है। गीता में भगवान् कृष्ण भी कहते हैं—'मनो दुर्निग्रहं चलम्।' अतः 'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।' कहावत है, 'धन का बढ़ना अच्छा है मगर मन का बढ़ना नहीं।' बूढ़ा मन ठीक उसी प्रकार जड़रीला होता है जिस प्रकार प्रेमचन्द के कथनानुसार 'अमीरी पर की पनपी हुई गरीबी।' हाँ, भिखारी के मन-प्रबोध में विशेषता इसकी है कि वे 'राम नाम रस' घोलने का आदेश देते हैं

जबकि मीरा अनायास, बिना प्रयास कहती है—'राम नाम रस पीजै मनुआं !' इस प्रकार मन को जीतने के अनेक उपाय भिखारी उपस्थित करते हैं—

१. राम कहऽ राम कहऽ मन दगाबजवा।
इहे लेके राम भजऽ बीतत बा अकाजवा॥

२. राम कहऽ राम कहऽ मन मतवालावा।
बिना दाम राम भजऽ कवन बा अकाजवा॥

३. राम कहऽ राम कहऽ राम कहऽ चोला।
सुन्दर पवलऽ तन धन जनम अनमोला॥

४. राम कहऽ राम कहऽ मन सैलनिया।
आठो घरी छोड़त बाड़ऽ मुसुकी अठनिया॥

५. राम कहऽ राम कहऽ मन मुँहचोरवा।
आई जब नियार तब गिरावे लगबऽ लोरवा॥

'मानस पुण्य होहि नहिं पापा' कहने का यह अर्थ नहीं कि मन में सदा पाप का ही निवास-स्थान बनाया जाय। यदि ऐसी बात होती तो 'मानस रोग' के प्रकरण को बढ़ाने की आवश्यकता नहीं होती। तत्वतः मानस-पाप ही मानस रोग बन जाते हैं प्रत्युत् शारीरिक रोग के रूप में प्रवर्तित हो आते हैं। भिखारी ने मन के साथ तन के सम्बन्ध को कसकर जोड़ दिया है। भिखारी के मतानुसार तन और मन दोनों पर कन्ट्रोल रखने की आवश्यकता है। एक-दूसरे में परस्पर बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है। मन के साथ तन पर भी 'जो रहीम तनु हाथ' है की जरूरत है। 'सैलनिया' मन विलासिता के गर्त्त में डूबा हुआ है। तत्पश्चात् मन की कहानी बड़ी ही विचित्र है। मन ही दगाबाज है। मन ही मतवाला है। मन ही मुँह की खाकर मुँहचोर है। मन क्या-क्या तमाशा दिखाता है, भिखारी खूब जान चुके हैं, पहचान चुके हैं। अतः वे दृढ़-चित्त होकर सिद्धान्त स्थिर करते हैं—

राम सुमिर, राम सुमिर, राम सुमिर भाई। नर तन के राम नाम लाखन दवाई॥
राम-नाम गनिका सुआ के पढ़ाई। राम-नाम जपलनि अजामिल कसाई॥

भिखारी की दृष्टि में लाख रोगों की दवा एक 'राम नाम' है। नौ के पहाड़े की तरह 'राम नाम अंक' का मूल्य भिखारी निर्धारित करते हैं, जो न कभी घटता है न कभी बढ़ता है। भिखारी की रचनाओं में आध्यात्मिकता के साथ-साथ व्यावहारिकता का पूर्ण सामञ्जस्य हमें मिलता है। भिखारी सोचते हैं, काश, ऐसा कारीगर उन्हें प्राप्त हो जाता जो उनके समस्त शरीर के भीतर बाहर सीताराम नाम की खुदाई कर देता।

श्री सीताराम नाम लिखऽ करिगरवा । जीभ दाँत ओठ गाल पऽ के लिलरवा ॥
नाक कान भहुँ पर पपनी नजरवा । गरदन छाती पर डाँड़ के भितरवा ॥

× × ×

बाँह पर जाँघ पर ठेहुना उपरवा । लबदर किली पर परे ना कसरवा ॥
हाड़ मांस रोआँ रोआँ गतर गतरवा । कहत भिखारी दास अतने अछरवा ॥

विश्व में सर्वत्र रमण करनेवाला 'राम नाम', जबतक मानव के मन और तन में नहीं व्याप्त हो गया तबतक उसकी व्यापकता और सार्थकता ही क्या है। वे सिर पैर की असाधारण और अलौकिक बात, जन-साधारण के निकट एक तमाशा बनकर, केवल कथनी बनकर रह जाती है। मगर भिखारी की अमर वाणी में कुछ ऐसा जादू है जो बरबस हमें बाँध लेता है, चिरकाल के लिए हृदय-पटल पर अंकित हो जाता है। जो भिखारी को मात्र 'नचनिया' समझकर हेय समझता है उससे मुझे कुछ भी नहीं कहना है। कहना है, उड़नबाज तोते से कि—

राम-राम बोलऽ बिहान भइल तोता।
भोजन सयन करत निसि बीतल, कबले लुकइबऽ अलोता ?

'बिहान' से तात्पर्य जीवन प्रभात से है। इस जीवन-प्रभात में साधक प्रतिज्ञा करता है—'जागे फिर ना इहंहीं'। 'अलोता' स्थान वह है जहाँ किसी की नजर न पड़े। मगर उस जगत् के नियन्ता की नजर कहाँ नहीं है ? उसकी नजर से छिपकर कोई कहाँ जा सकता है और कैसी है राह, सहज-सुबोध 'राम-राम' की। ऐसा सुन्दर-मधुर, चुस्त-दुरुस्त और चलबुला नाम ही नहीं दिखाई देता। क्या लोक ? क्या परलोक ? कहीं इसका जोड़ नहीं। सर्वत्र इसकी महिमा न्यारी है।

राम के महत्त्व के प्रतिपादन में भिखारी गणिका की बहुत ही प्रशंसा करते हैं। अपने व्याख्यान में भी वे कहा करते थे। गणिका एक काठ के सुग्गे को पिंजड़े में बन्द करके 'राम राम' पढ़ाया करती थी। शायद किसी ने बता दिया था कि जब काठ का सुग्गा 'राम राम' बोल देगा तो उसको भगवान् के दर्शन होंगे और उसकी मुक्ति हो जायेगी। गणिका काठ के सुग्गे को प्यार से पढ़ाती जा रही है। कई दिन निकल जाते हैं। मगर काठ का सुग्गा जो ठहरा। 'बिहान' होने को आता है। मुर्गा बोलने लगता है। फिर भी सुग्गा नहीं बोलता। अब गणिका ज्यों ही तलवार अपनी गर्दन पर चलाना चाहती है कि सुग्गा 'राम राम' बोल देता है। भिखारी गा उठते हैं—

राम कहऽ राम कहऽ राम कहऽ सुगवा।

चित चोर रामजी दुलहा !

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा वर्णित राम-विवाह में तरह-तरह की विशेषताएं हैं। सीता-राम का प्रथम दर्शन (पूर्वानुराग) फुलवारी से प्रारम्भ होता है, जिसे हम गान्धर्व-विवाह कहते हैं। स्वयंम्वर प्रथा के अनुसार वही विवाह सुदृढ़ होता है, पिनाक-भंग होने पर। परशुराम का गर्व-मर्दन मानो राम-विवाह का एक अनिर्वचनीय आनन्द और उल्लास है। उस आनन्द और उल्लास में अयोध्या से विधिवत् बारात सज-धज कर आती है और वैदिक रीति से सम्पन्न होता है।

मर्यादा पुरुषोत्तम का सम्पूर्ण चरित्र ही स्तुत्य है। फिर भी उसमें उनके विवाह का प्रसंग तो अत्यन्त मांगलिक है और रुचिकर है। वह वैवाहिक प्रसंग इतना मोहक एवं लुभावना है कि बरबस मानव-हृदय को खींच लेता है। मानव-जीवन की चरम खुशी, परम आह्लाद का नाम विवाह है। उसमें राम-विवाह की झांकी इतनी मादक एवं प्रिय है कि उसे हम गा-बजा कर भी अपनी जन्म जन्मान्तर की साध मिटा लेते हैं। भिखारी को आखिर 'फुलवारी की जगह' ही क्यों अच्छी लगी ? जनक की फुलवारी में आखिर क्या था ? भिखारी कहते हैं—

मिथिला पति के बाग अतिसय पवनवा समीप सर के बाटे गिरिजा भवनवा।
सीत घाम रहित पवन आगमनवा सकल रितु में जइसे खास ह सावनवा।
सियाजी सिंगार साजि बसन भूसनवा हरषित मनवा हेतु गौरी पूजनवा।
चलि भइली सखि संग करिके असनानवा मनोहर बानी में गावत रग-रंग के गानवा।
कंकन किंकिन बाजत बा गहनवा सबद परत बा त्रिभुवन धनि तरवनवा।
नृप दसरथ पुत्र जनक सुतानवा लता के ओट से छनछेप बिलोकनवा।
हाथ में धनुष बान सिर मे जुलफनवा करेज सालत बा बांकी मधुरी मुसुकनवा।
अगिया में आइकर बिहलन बरसनवा दुनों भइया के ह अवधपुर मकानवा।
स्याम सुन्दर नाम कोसिला ललनवा सुमित्रा तनय गोर लछुमन सजनवा।
कहत भिखारी ललका कमल बरनवा लोभाइल मनवा लखि सांवर गोर तनवा।

जनकपुर का हरा-भरा सुरम्य प्रदेश। जनक राज की मनोहारिणी पुष्प-वाटिका। उस उद्यान में अवर्णनीय शोभा सम्पन्न सर और 'सर समीप गिरिजा गृह सोहा'। विकसित विविध पुष्पों की मादक-मदिर सुगन्ध और उस सुगन्ध को सर्वत्र बिखेरनेवाला—'सीत घाम रहित पवन'। प्रातःकालीन स्नानादि का ब्राह्म

मुहूर्त और उसी मुहूर्त में मैथिल-कोकिलाओं की एक टोली का आगमन। उन पोड़सी सुकुमारियों में विराजती हुई 'सिंगार साजि बसन भूषनवा' जनक किशोरी। और उधर गुरु के आदेश से आये हुए प्रेम के अतिथि राम और लक्ष्मण। किशोरी जी को साक्षात्कार होता है—'लता के ओट से'। वह भी पूर्णरूपेण नहीं 'छनछेप बिलोकनवा'। प्रेम की यह लुका-छिपी सर्वथा निराली है। आखिर, किशोरी जी दिल मसोस कर रह जाती हैं—'करेज सालत बा'। श्रीराम की 'बाँकी मधुरी मुसुकनवा'। यहाँ यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि भिखारी का प्रस्तुत पद संस्कृत शब्दों के पुट्टों से युक्त होकर 'प्रिय प्रवास' के पदों से टक्कर ले रहा है। उन संस्कृत शब्दों के गहन अथच गंभीर शृंखलाबद्ध आवरण में झिल-मिलाते हुए एकाध भोजपुरी के कोमल तथा भाव-प्रवण शब्द—'ललका,' 'छनछेप' नजर आ रहे हैं। इस पद से ऐसा प्रतीत होता है कि भिखारी तुलसी से प्रभावित ही नहीं हैं, प्रत्युत उनके समस्त पद मानस की पंक्तियों से हू-ब-हू आच्छादित हो गये हैं। अस्तु। यह लीजिये अयोध्या से सज-धजकर आती हुई बारात की झाँकी :—

राजा दशरथ जी के हुलसत बा छतिया, राम राम हरे हरे।
नेवतत जाति परजतिया, राम राम हरे हरे।
अवध नगरिया से चललि बरिअतिया, राम राम हरे हरे।
दिन राति जात तिरहुतिया, राम राम हरे हरे।

जैसे चक्रवर्ती महाराज की विशाल वाहिनी जा रही है। कैसी है इस बारात की यात्रा—अखण्ड यात्रा। बिना तिरहुत पहुँचे बीच में कोई रुकने का नाम नहीं लेता। उल्लास और हौसले में पता नहीं चल रहा है कि लोग रात में चल रहे हैं कि दिन में। अन्दाज तो ऐसा है कि जिस पथ से अवध-नरेश की बारात गुजरती होगी, वह पथ आलोकित, पुलकित और मुखरित हो जाता होगा। तिरहुत पहुँचने के पश्चात् तथा राम-सीता का युगपत् प्रेम कराने के पश्चात् भिखारी बारात दरवाजे लगाते हैं—विशाल बारात का नतीजा यह कि सारा जनकपुर ही घिर गया है—

गइयां घेराइल आइल राम के बरात हे। जनकपुरी में बाटे मंगल गवात हे॥
बाग में समियाना भरल तमुआ कनात हे। जनकपुरी में बाटे मंगल गवात हे॥
सभ केहु आपुस में करत बाटे बात हे नाच घर के रचना केहु से नइखे कहात हे॥

बारात में मात्र जनकपुरी ही नहीं घिरी है; वरन, जनकपुर के बाग-बगीचे तक तम्बू-कनातों से भर गये हैं। यह सामान्य व्यक्ति की नहीं, चक्रवर्ती महाराज का जनवासा है। 'अतिशयोक्ति' तो यह है कि नाच के आचार्य भिखारी 'नाच घर' की रचना देखकर दंग हैं, परेशान हैं, किंकर्तव्य-विमूढ़ हैं। नहीं नहीं, किंकर्तव्यविमूढ़ नहीं, भिखारी ध्यानस्थ हैं, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार राजापुर के सामने वन-यात्री

राम को पाकर तुलसीदास। उस समय का आकस्मिक आया हुआ 'तापस' ही है ध्यानस्थ तुलसीदास। बारात की एक झांकी और लीजिये—

धनि मिथिलेश कइले मिथिला गुलजार हे। अइलन बरात लेके अवध सरकार हे॥
रथ पर दशरथ राजा सब सरदार हे। पालकी में रिघुहन भरत कुमार हे॥
घोड़ा पर चढ़ि के अइलन अवध सरकार हे। कोटिन जुझार वीर लेके हथियार हे॥
ऊँट गाड़ी पैदल बहुत अहँगीवार हे। चलत फतार वान्हि हथियन के हार हे॥

× × ×

उड़त निसान बाजे ऊँट पर नगार हे। कबहूँ ना देखलीं अतना बती बरनिहार हे॥
आसा सोटा चँवर बलम पखा बेसुमार हे। कवि जन करत गाड़े कविता उचार हे॥

दृश्य ठीक वही है जैसी बारात भोजपुरी इलाकों में सजाई जाती है। हाँ, विचारणीय विषय यहाँ यही है कि 'कबहूँ ना देखलीं अतना बती बरनिहार'। यह तो कुछ उसी प्रकार की बात हुई, जिस प्रकार की 'सो मूरख जो किय चह लेखा'। त्रिभुवन पति राम की बारात में प्रकाश के लिए चाँद-सूर्य को ले आना चाहिए था; क्योंकि राम पुरुषोत्तम हैं। अगर वैसी व्यवस्था न हो सकी, तो आज बीसवीं शताब्दी में भिखारी को समस्त जनकपुर में 'मरकरी' फिट करा देना चाहिये था; क्योंकि राम के युग में भी प्रकाश की वैज्ञानिक व्यवस्था थी। अब लीजिये बारात का 'परिछावन'—

अवध से अइले बितचोरवा, हे सखि चलऽ घर परिछे।
बाल वृद्ध जुवती उठि धउरत, करि करि के आपुस में सोरवा॥ हे०
साजि के सिंगार सब गहना पहिरलऽ, नीमन लहँगा पटोरवा॥ हे०
दही, अछत, गुर दउरा में धरि लेहु, भरि लेहु सेनुर सिन्होरवा॥ हे०
रथ पर समधी संगे बरिअतिया, लागत बा कइएक करोरवा॥ हे०
हाथी प साधु सब माला लगवले, सिर चनन कइले बा खोरवा॥ हे०
धावल आवत बाजा बजावत, नगर के कइले हँड़होरवा॥ हे०
अवध के लोग खखुआइल अइलन, खाय खातिर केरा परोरवा॥ हे०

तनिक स्त्रियों में परिछावन की अकुलाहट देखिये—'बाल वृद्ध युवती उठि धउरत' जैसे सभी में जोश आ गया है। जवानी आ गई है। सभी समान हो गई हैं। यह 'धउरत' होश-हवास भुलाकर दौड़ना है, उल्लास की दौड़ है। राम की बारात ने जनकपुर की स्त्रियों के सभी 'धरौउ' वस्त्र—'नीमन लहँगा पटोरवा' सन्दूक और झाँपी से बाहर कर दिया है। कैसे है परिछावन के मांगलिक द्रव्य—'दही, अछत, गुर तथा सेनुर'। रखे गये हैं 'दउरा' में। 'हँड़होरवा' है कोलाहल, जिससे सारा जनकपुर आक्रान्त है। 'खखुआइल' को अभिव्यक्त करनेवाला समानार्थक दूसरा हिन्दी का शब्द ही नहीं मिलता। 'खखुआइल' एक ऐसी भूख है, जिसकी चाह जीवन

में अत्यधिक रही है, जो कभी खाने को न मिली हो या कम-से-कम मिली हो। अयोध्या में केला-परवल कम होते हैं और मिथिला में उनका आधिक्य है। मिथिला की स्त्रियाँ अवध-वासियों की खिल्ली उड़ाती हैं–'अवध के लोग खलआइल अइले, खाये-खातिर केरा परोरवा।' बारात दरवाजे लगने के बाद दूसरा रंगीन चित्र आता है—मण्डप का। 'चितचोरवा' को देखने की लालसा में—

भइल बा मँडउआ में भीर।
दरसन हेतु आपस में तरसत, हित नेवतहरी फकीर।
केहु कहत बरबस हम देखबि, आपुस में खींचत लकीर।
राम सिया दुलहा दुलहिन के, स्यामल गौर सरीर॥

यह है मण्डप की भीड़—दुलहे के वर्णनार्थ। जैसे परस्पर बाजी लगी हुई है-'आपुस में खींचत लकीर' कि कौन पहले देखेगा अथवा कैसे अमुक नहीं देखने देगा। यह मुहावरा वैसे ही है जैसे–'रेख खँचाइ कहेउ बल भाषी' या 'रेख तिन्ह खाँची'। अब लीजिये क्रमालंकार–'राम सिया दुलहा दुलहिन के स्यामल गौर सरीर'। यह दुरंगी दुनिया मात्र दो ही रंगों में भुलाई हुई है, लुभाई हुई है–'रूप देखि के भूलल बाड़ऽ साँवर गोर तनवा'। इस 'साँवर गोर' रूप की विशद उद्भावना देखिये—

झरत बाटे मिथिलेस के भवनवा, हाय रे जियरा दुलहा के रूप अनमोल।
कारी कारी जुलुफी के ऊपर से मउरिया, हाय रे जियरा, झूलत बा कुण्डल कपोल।
साँवर साँवर गोर गोर उमिर बा बरोबर हाय रे जियरा केहू नइखे लागत मझोल।
करत बाटे मन जे अकेले बतिअइतीं, हाय रे जियरा, कहत भिखारी परदा खोल।

× × ×

बर चारो जनवा से सोभत बा अँगनवा, हाय रे जियरा, बाड़न रूप के खजानवा।
आजु के ह धनि रोज पंचमी लगनवा, हाय रे जियरा, धनि मास अगहनवा।
इहे कहि कहि करि गावत बाड़ी गानवा, हाय रे जियरा, तिरहुति के जनानवा।
चरन कमल में भिखारी के कथनवा, हाय रे जियरा, तेकर करीं का बखानवा।

डा० 'माधव' की कलम से बराबर अंकित हो जाता था–'सुन्दर का जादू सीधे हृदय पर चलता है। रूप की चोट सबसे करारी होती है। रूप का घायल रूप का पुजारी हो जाता है।' भिखारी को भी रूप का घायल ही समझिये। उनकी आँखों के सामने रूप का खजाना था। मर्यादा पुरुषोत्तम का आवरण हटानेवाले इधर भिखारी ही दीख पड़ते हैं। राम में मधुर भाव की कमी थोड़े है? जंगल की विकट-राह में भी पुकार होने लगी थी–'सुमुखि कहहु केहि आहि तुम्हारे'? कृष्ण-प्रेम का मधुर भाव उधर कुबरी तक पहुँच सका है, मगर राम-प्रेम के मधुर भाव में शूर्पणखा (निशिचरी) भी वंचित नहीं रह सकी है। और बूढ़ा शबरी? भक्त

बिहारी का उधर 'मकराकृत कुण्डल' है, तो इधर शाक भिखारी का 'झूलत बा कुंडल कपोल'। अब लीजिये विवाह की विधियों को —

चललन वसिष्ठ मुनि ज्ञान के निधान हे। गौरी गनेस के भइल सनमान हे॥
गहना चढ़त बा नारी गावे गान हे। मांड़ो में बइठलन जनक अजमान हे॥

आभूषणों की पूजा का नाम है—'गुरहथी' और सिंदूर-दान का नाम है—विवाह। कोहबर उस एकान्त गृह का नाम है, जहाँ विवाह के बाद वर-कन्या उपस्थित होते हैं—

चउका प अवधबिहारी, राम राम हरे हरे।
× × ×
पहिले से धिरवति सरहज सारी, कोहबर के रोकवि दुआरी, राम राम हरे हरे॥

'कोहबर' का द्वार रोकने की प्रथा अनादि काल से चली आ रही है। सखियाँ 'चउके' पर ही राम को 'धिरवनी' है अर्थात् भय दिखाती हैं। इतना ही क्यों प्रेम की गालियों की झड़ी लगा रही हैं। भिखारी लिखते हैं—

चलि आवत बा दिलगी रिस्तदरिया में।
बाप गोर बेटा करिया कहके भइल बाटे गरिया त्रेतायुग मिथिलेस के नगरिया में॥

विवाह की गाली की तारीफ में एक कवि लिखता है—'सबके मन हरषित करे ज्यों विवाह में गार।' 'कोहबर' के विनोद के पश्चात् कवि राम के शान्त स्वरूप का आकलन करता है—

रामजी के हो रतनार बाटे नैना।
फलफूल पत्र सघन गछियन के, जइसे तनाइल सर्मना।
रघुवर जस तस नख सिख सीता, तस रानी कोसिला सुनैना॥
और, चारु भइया अइले ससुरारी हो चारु दुलहिन योग।

राम-सीता के विवाह में यही खूबी है कि सभी जोड़ी समान हैं। तुलसी को 'सम समधी' दीख पड़े थे और भिखारी को 'कोसिला सुनैना' की जोड़ी भी समान ही दिखाई पड़ती है। दुल्हे के प्रति खास करके मिथिला वासियों की राय है—

अइसन ना अइलन नगर में, दुलहा।
नर-नारी मिथिला के बासी चरचा करत घर-घर में।
× × ×
उमरि बरोबर रूप के आगर, सागर समइलन गागर में।
माई भिखारी कहत ना निकलिहन, गड़ि गइलन भीतरी नजर में।

विशेषता है कि चार दुल्हे 'उमरि बरोबर रूप के आगर', 'जनु-जीव उर चारिउ अवस्था विभुन सहित विराजहीं'। ध्यान दीजिये—'गागर में सागर भरने'

की उक्ति पर। 'महलन भीतरी नजर में' की व्याख्या 'अब कसेहु निकसत नहि उधो तिरछे ह्वै जु अड़े' की व्याख्या से भी जटिल है। अड़ी चीज हिलाने-डुलाने से निकल भी सकती है, मगर गड़ी चीज को निकालना अत्यन्त मुश्किल है। इस अपरूप रूप पर बिकी स्त्रियाँ प्रेम-भरे शब्दों में निवेदन करती हैं—

रहिजा एहिजे अवध के राजा।
जेते सखा संग साथ में, मिलकर सकल समाजा।
करिके उदास मंडप चलि जइबऽ, हमनी से परी तनाजा।
प्रेम के प्यासी दासी प्रभु के, अवलन के राख लाजा।

जनकपुर की स्त्रियों की साध 'रहि जा एहिजे' अत्यन्त सराहनीय है। वह भी अकेले नहीं—'मिलकर सकल समाजा'। वियोग अथवा बिछोह के भय से कांप जाती हैं, सिहर जाती हैं वे स्त्रियाँ 'करि के मण्डप उदास चलि जइबऽ'। परिणामस्वरूप, मिथिला के प्रेम ने राम को सदा के लिए जुदा कर दिया मिथिला से। राम को पुनः हिम्मत न पड़ी कि वे जनकपुर जायँ। सखियाँ बारम्बार निवेदन करती हैं—

लेके चलि जइब हो दुलहा, जनक किसोरी।
हम कइसे रहबि हो दुलहा, मिथिला अगोरी।
नाहिं प्रान रहिहें हो दुलहा, होता बरजोरी।
बिसरत नइखे हो दुलहा, राम सीता गोरी।
नइखे कहे आवत हो दुलहा, अकिल बा थोरी।

कन्या की विदाई सुनते ही सब का हृदय सहम जाता है। शकुन्तला जब दुष्यन्त के घर जाने लगी थी, तो तपोधन कण्व का हृदय छलछला आया था। 'कनक पिंजरन्हि राखि पढ़ाये' सुग्गे पूछते है—'व्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही ?'

सब से हृदय-द्रावक दशा होती है स्त्रियों की। उन स्त्रियों की जिन्हें स्वेच्छा से कहीं मिलने-जुलने की इजाजत नहीं है, जिनकी दशा पिंजरकीर से अधिक नहीं है। उनका हृदय बैठ जाता है मात्र-स्मरण से —

लेके चलि जइबऽ हुलहा, जनक किसोरी।

कहनेवाले कहते रहें—'साहस, अनृत, चपलता, माया-भय अविवेक, असौच, अदाया' आठ अवगुण है। पर स्त्रियों के पास गुण-ही-गुण हैं। नारी के पास है—सेवा, त्याग, तपस्या, धैर्य, दया, माया, क्षमा, सहानुभूति। करुणा की तो मानो नारी मूर्ति है। करुणा की एक साक्षात् तस्वीर आँखों के सामने खड़ी हो जाती है—

आँचल में है दूध और आँखों में पानी।

पुरुष में भरा हुआ है उसका प्रबल प्रलयंकारी पुरुषार्थ। जब तक पुरुष उस ज्वाला को गले तक उतारता है, तब तक नारी उसे आँचल के नीचे सहेज लेती है। लक्ष्य करते हुए किसी विचारक ने निर्णय किया है—

The ultimate destiny of man is to become a woman.

अविनाशी देवाधिदेव की महत्ता की तह में तथ्य यह है कि उन्होंने उस ज्वाला को, प्रलय के विष को गले में दबा लिया है। स्त्रीत्व को अंगीकृत कर लिया है—

विष भूषन तिय भूषन ती को।

'यह तन सतीहि भटे मोहि नाहीं' कहनेवाले दृढ़प्रतिज्ञ की यह हालत है। शंकर सिर से पैर तक शक्ति से सुरक्षित है। गंगा और पार्वती के बीच में उनका निवास है। अतः उनका विनाश नहीं होता। और, करुणा का क्या कहना? वह तो मानो कविता का ही दूसरा नाम है—

Our sweetest songs are those that tell of saddest thoughts. भिखारी में दर्द के गीत गानेवाली नारी बैठी हुई है। जिस कवि के हृदय में नारी (नारीत्व) विद्यमान है, वही कवि मर्मस्थल को पहचान सकता है। भिखारी नारियों के स्वर में स्वर मिला कर कह रहे हैं—

नइखे कहे आवत हो दुलहा, अकिल बा थोरी।

इन नारियों से मतलब गार्गी और मैत्रेयी से नहीं है। ये हैं भोली भाली ग्रामीण स्त्रियाँ। इनके पास भाव है, भाषा नहीं। दर्द है, वेदना है, टीस है; मगर, अभिव्यक्ति (Expression) नहीं है। जीवन की गम्भीर स्थिति में पहुँचकर परम ज्ञानी भी मूक बन जाता है। उसके लिए सुखद अनुभूति 'गूँगे केरी सरकरा' बन जाती है। जिन्दगी से शिकस्त एक व्यक्ति अपनी दशा का उल्लेख संगीत की भाषा में करता है—

शिकस्त ये साज पर ऐसे भी वक्त आते हैं।
तार होते हैं मगर नगमगी नहीं होती॥

हाँ, तो दुल्हे राम की बिदाई के सम्बन्ध में एक बात लिखने के लोभ का संवरण मैं नहीं कर पा रहा हूँ। वैसे तो राम अपने रामत्व के लिए प्रसिद्ध ही हैं। राम का रूप, उनका गुण, उनका शील-स्वभाव, उनका उदार चरित्र कहीं किसी के लिए भूलने लायक नहीं है। उनकी उदात्त वृत्तियाँ सर्वत्र सदा याद की जायेंगी।

मगर दुल्हे की मनोहर तस्वीर तो मात्र मिथिला के ही भाग्य में पड़ी है। अतः मिथिला वासियों का अधिकार राम दुल्हे पर विशेष रूप से है।

मर्यादा पुरुषोत्तम को 'चित-चोर' की उपाधि से विभूषित करने का स्वत्व एकमात्र मैथिल-कोकिलाओं को ही प्राप्त है। यद्यपि वे भोली-भाली, अल्हड़-विह्वल स्त्रियाँ अपनी साध पूरी कर लेती है-'होरीः खेल रहलीं रघुवर से'; मगर, चलते-चलते अपनी उलाहना छोड़तीं नहीं—

साँवली सुरतिया, दिल में मोहिनी मुरतिया, रामजी दुलहा।
गढ़ि गइले कोसिला किसोर, रामजी दुलहा।
पिरितिया लगाइ, काई कइके चलि जइब, रामजी दुलहा।
मिथिला से कहइब चितचोर, रामजी दुलहा।

लागल बा कुबरी के तीर !

जयति कपिध्वज के कृपालु कवि वेद पुराण विधाता व्यास ।
जिन के अमर विराजित हैं सब धर्म, नीति, दर्शन, इतिहास ॥

श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास भगवान् के बनाये अनेकानेक ग्रन्थ माने जाते हैं-चार वेद, छः शास्त्र, अठारह पुराण तथा महाभारत जैसा सुविशाल ग्रंथ। अन्तिम ग्रंथ है भागवत। भागवत में कवि के जीवन की संचित निधि है। उनकी समस्त कृतियों में भागवत सर्वोत्कृष्ट है। संक्षेपतः जगत के सारे विषय भागवत में हैं, जो उसमें नहीं हैं, अन्यत्र कहीं नहीं हैं। फिर भी सारतः जो विषय भागवत में है, वह है - श्रीकृष्ण चरित्र। लीला पुरुषोत्तम की प्रेम-लीला के आलम्बन हैं—गोपियाँ। गोपियाँ श्रुतियों के अवतार के रूप में मानी जाती हैं। प्रेम-दीवानी गोपियाँ। नाम मात्र से अनायास निकल पड़ता है 'हम न भईं वृन्दावन रेनु' प्रत्युत—

आसामहो चरण रेणु जुषांमहस्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।

लोक कलाकार कविवर भिखारी ने अपनी लेखनी का विषय कृष्ण की प्रेम-लीला को ही बनाया है। इस प्रेम-लीला में छककर वे स्वयं गोपी का स्वांग बनाया करते थे और यशोदा से कृष्ण की छेड़खानी की उलाहना दिया करते थे। श्रीकृष्ण-लीला में गोपी की भूमिका में भिखारी का अभिनय जितना उच्च कोटि का होता था, उतना उच्च कोटि का अभिनय कम लोग कर सकते हैं। अपने उस गोपी के स्वांग का भिखारी तल्लीन-तन्मय होकर निर्वाह करते थे। जिसने उनके नाच-समाजे देखे हैं, वे ही मेरे कथन की सत्यता को समझ सकते हैं, दूसरे नहीं। कृष्ण की प्रेम-लीला से पहले भिखारी कृष्ण जन्मोत्सव मनाते हैं। उनका एक मांगलिक सोहर लीजिये—

भादो के अन्हारी अष्टमी पावन बहुत सोहावन हो,
ललना लिहलन कन्हइया अवतार तऽ रोदन सुनावेलन हो।
केहु आवत सोहर गावत धरिया बजावत हो,
ललना नन्द जी के मिलल खबरिया धनरिन बोलावेलन हो।

प्रथम 'धनरिन' चमारिन ही बुलाई जाती है। उत्सव की मांगलिक घोषणा उसी के 'चमरउआ बाजा' से की जाती है। 'नार' काटने का कार्य भी देहातों में उसी के द्वारा सम्पन्न होता है। पुत्र होने पर थाली भी महिलाएँ बजाती हैं।

कृष्ण-लीला का एक रंगीन दृश्य पनघट का भी बड़े मजे का है। भिखारी ने उसी दृश्य को अपनी रचना में अंकित किया है। युगों से प्रेम की कहानी अभिव्यक्त करनेवाली काली कालिन्दी अजस्र भाव से प्रवाहित हो रही है। उसी के तट पर यह खेल प्रारम्भ होता है। श्रीकृष्ण पहले से झाड़ियों में छिपे हुए हैं। सखियाँ आती हैं – सोलहों शृंगार और बत्तीसों आभरण से युक्त होकर। सिर पर जल का घड़ा है और मुख से कहती आ रही है–'कब मिलिहें नन्द लाला', कि अकस्मात् कृष्ण से साक्षात्कार हो जाता है और परस्पर छेड़छाड़ शुरू हो जाती है। अष्ट महासखियों में ललिता का स्थान अन्यतम है। अतः ललिता ही दुःसाहस करती है—

देखाव मती जारी ए गिरिवर धारी।
चोलिया मसकि गइले, चोलिया मसकि गइले, अँगुरी बुलइले रेसमिया फाटल सारी।
अइसन अनीति पर, अइसन अनीति पर, आफत लगाइबि हम ना हईं दोसर नारी।
सोझा से चलि जा हमरा, सोझा से चलि जा हमरा, रसिक बिहारी तू कइलऽ बटमारी।
कहत भिखारी तोहें, कहत भिखारी तोहें, भजन सुनाइबि इजतिया भइल भारी।

'देखाव जारी' मुहावरा का अर्थ धाक जमाना। 'मसकि गइल' सीधा नहीं चरमरा कर फट जाना के अर्थ में है, जो मात्र चोली के लिये ही सुरक्षित शब्द है। इस कलित-क्रीड़ा में नौबत यहाँ तक आ जाती है कि 'अँगुली' दुखने लगती है–हम ना हईं दोसर नारी'। 'इजतिया भइल भारी' भी मुहावरा है, अर्थ होगा 'इज्जत गवाने का विचार।' भिखारी की कविताओं में सर्वत्र मुहावरों और कहावतों की भरमार पाई जाती है। उनकी भाषा चलती मुहावरेदार भोजपुरी है। खैर दूसरी सखी ले उठती है—

सुन ए मोहन प्यारे, हमना खेलबि तोहरा संग।
सारी मोरि फारि दिहलऽ, बँहिया झकझोरलऽ, सुन ए चोलिया के बनवा कइल भंग।
रीति अनरीति भइलीं हम बेपानी, सुन ए लउके लागलऽ सगरो अंग।
गाल के बनवल हाल, मोती लर तुरलऽ, सुन ए जोबना के कइ दिहल तंग।
कहत भिखारी आजु कइलऽ बरियारी, सुन ए आँखि भइँ चलत बा बेरंग।

ये सभी हैं, प्यारे मोहन के कार्य-कलाप। सखियों की साड़ी को फाड़ना उनकी बाँहों को झकझोरना, चोली के बन्द तोड़ना, रीति में अनरीति करना अर्थात् बेपानी करना (इज्जत लूटना)। परिणामस्वरूप सखियों के 'लउके लागल सगरो अंग', जिसे Lifting of the Veil कहा जाता है। यह है आत्मा और परमात्मा का निरावरण होकर मिलन। जायसी ने कहा है—'अब वह गाल काल जग भयउ' भिखारी ने उसी 'गाल के बनवल हाल' और 'जोबना के कइ दिहलऽ तंग' इतना तंग कि पुरुष स्त्री का विभेद चला जाय। यही कारण था कि शुकदेव के

सामने गोपियाँ नंगे स्नान कर रही थीं और व्यास को देखकर उन्होंने वस्त्र धारण कर लिया था। तारीफ तो यह है कि कृष्ण की दृष्टि में अभी कुछ छूट ही गया है; क्योंकि, उनके 'आँखि भइँ चलतउ वा बेरंग'। याद आता है 'रद पुट फरकत नैन रिसौहैं' जिसकी दूसरी कवायद है—'मानहु रोष तरंगिनि बाढ़ी'। अन्तर यही है कि उस रोष में जहर है और इस प्रेम के रोष में अमृत भरा हुआ है। अस्तु, सखियाँ तै करती हैं 'चलि के जसोदा से कहबि ई बतिया'। बस क्या था? झुंड-की-झुंड सखियाँ यशोदा के आँगन में एकत्र हो जाती हैं और अपनी-अपनी शिकायत बारी-बारी से पेश करने लगती हैं। एक सखी कहती है—

भइया यसोदा जी कइलन बेहूरमति सखियन के कान्हा तोर।

× × ×

कहे भिखारी बसे ना देतन, तनिको भर रहितन जो गोर॥

भिखारी द्वारा उपस्थित लक्षणा 'तनिको भर रहितन जो गोर' देखने ही लायक है। कवि का चातुर्य है कि उसने कृष्ण के लिए काले कलूटे का नाम तक नहीं लिया है और कृष्ण के रंग की उद्भावना इतनी काली हो गई है कि उसमें गोराई का लेश भी नहीं है। हिन्दी साहित्य में इस प्रकार की व्यंजना शायद ही मिले। सूर की गोपियों ने कृष्ण के रंग—सादृश्य में कालों की एक फिहरिस्त तैयार कर दी है और काले के साथ कृतघ्न तक कह दिया है। 'कहा कारे की जाति' तथा 'कारे मधुप भँवारे' आदि। अब कृष्ण के काले कारनामों का वर्णन दूसरी सखी से सुनिये—

भइयाँ के इजत बाँची तोहार बेटा भइले बावन बीर।
देलि के अकेला बखेड़ा मचावेले, सखियन के कोरेले चीर।
जल्दी उपाय करऽ पाछे पछतइबु, नाम्हे से भइले अमीर।
एगो सलाह करऽ घरवा में बनकरऽ बहरी ले भर दऽ जंजीर।
कहत भिखारी तोहार धन बरबाद कइके नंद के बनइहें फकीर।

'नाम्हें से भइले बावन बीर' सही ही है—'तीन पैंग वसुधा करी तऊ बावने नाम।' ऐसे 'बावन बीर' को घर में बन्द करने की आवश्यकता है। बलि की तरह पाताल के बावन दरवाजे वाले घर में नहीं प्रत्युत—

मैना भीतर आव तू आतेहि नैन झँपेऊँ। ना मैं देखूँ और को, ना तोहि देखन देउँ॥

दूसरी शोचनीय बात है कि—'नन्द के बनइहें फकीर'। सौन्दर्य का ऐसा ही करिश्मा है—

हसिनाने जहाँ उजड़ी हुई महफिल में रहते हैं।
जिन्हें बरबाद करते हैं उन्हीं के दिल में रहते हैं।

उलाहनों से तंग आकर माँ यशोदा कहती हैं कृष्ण से—'तू नान्हे से भइलऽ हीठ, चभुकी से हम फोरबि पीठ।' कृष्ण अपनी सफाई देते हैं—'लगवले बाड़ी मइया ललिना लहरवा।' भोजपुरी के 'लहरा' पर ध्यान रखिये। बात में चिकनी चुपड़ी मिलाकर किसी को उत्तेजित करना। इसी तरह सखियों और कृष्ण में तरह तरह की पक्षपातपूर्ण बातें होती है। यशोदा अपने लाड़ले दुलारे लाल पर बिगड़ती हैं—

मोहन करबलऽ फजिहतिया, हम ना छोड़बि तोहार जान।

× × ×

राति दिन ओरहन सोगिया लगवनिन के, सुनत सुनत बहिर भइल कान॥

भोजपुरी में औरतें परस्पर गाली देती है—'सोगिया लगवनिन के।' कृष्ण पुनः माँ से अपील करते हैं—

मइया बतिया हमार सुनऽ साफा।

लइकी के बात तूँ साँचे पतिअइलू सहजे में हो गइलू खाफा।

'लइकी' माने छोटी और 'पतिअइलू' माने विश्वास कर लिया। यशोदा के विश्वास कर लेने पर सखियों का मन बढ़ जाता है और वे नाना प्रकार की शिकवा-शिकायत कृष्ण के प्रति तैयार कर लेती हैं और तरह-तरह से यशोदा के समक्ष सुनाने लगती है—

पनिघटवा कइसे केहू जाई।

× × ×

गरिया से तर कइलन आई नथिया बेसर धइलन देखितू त तूंही जइतू सरमाई।

सूर ने लिखा है—'नीबी ललित गही बदुराई' कि अचानक यशोदा आ जाती है, तो कृष्ण कह उठते हैं—'राखी गेंद चुराई'। मगर भिखारी कहते हैं 'नथिया बेसर धइलन' और 'देखितु त तूँ ही जइतू सरमाई'। कृष्ण-लीला का प्रफुल्ल स्वरूप देखना हो, तो भिखारी के दूसरे पदों को देखिये—

(क) जमुना में जात रहीं जल भरे हो कान्हा हमसे कइलनि तकरार।

× × ×

बछरू चरावे के बहाना नित हो लेलन इजत हमार॥

(ख) जइसन करत बाड़न करनी बिहारी। हम बतिया कहबि निरआरी।

जात रहीं जमुना में जल भरे हो, रोकलन डगर हमारी।

कंकड़ चला के गगरी फोरलन, धइलन भरि अँकवारी।

मोती हार हजार के तुरलन, हाथ गला बीच डारी।

रगर-झगर में बाँह ममोरलन, फरलन तन परके सारी।

× ×

लाज के बात बताईं कइसे ? देखलन लाँगट उघारी।

× × ×

धइके कसर लेबि सब दिन के, चाहे तूँ देबू उजारी।

'बतिया निरुआरी' स्पष्ट बात, साफ सुथरी बात। शायद बड़े लोगों को इस प्रसंग में शर्म मालूम होती हो अतः उनसे विनम्र प्रार्थना है कि प्रस्तुत प्रसंग यशोदा-सखी संवाद है। सूर की यशोदा ने तो स्पष्टतः राधा से उनकी माता के लिये कहा है—'वै तो बड़ी छिनार'। भिखारी स्वयं अच्छी तरह जानते थे—'विद्या से बानी कमजोर'। अतः अनलियत पर मुलम्मा चढ़ाकर कहने की उनकी आदत न थी। वे सबकुछ 'निरुआर' कर लिखते थे 'धइलन भरि अँचवारी'। काव्यत्व का मुलम्मा चढ़ाकर गुप्तजी उर्मिला के मुँह से कहलाते हैं—

सी-सी करती हुई पार्श्व में पाकर जब तब मुझको।
अपना उपकारी कहते थे मेरे प्रियतम तुझको।

'हाथ गला बीच डारी' स्पष्ट है। उलझा हुआ है—'गलबाहीं हो या हो कृपाण ? वीरों की संगति नहीं बैठती वसन्त से। बैठती है तो ग्रीष्म से—'दखो ग्रीष्म भीष्म तन धारे।' 'ममोरलन' ऐंठने के अर्थ में है। यह 'लाँगट उघारी' का ही नतीजा है कि सखियाँ मनसूबा बाँधती हैं—'धइके कसर लेबि सब दिन के। इस तरह का भाव लक्ष्मण के वचन में मिलता है—'पुनि आनिये व्यवहरिया बोली'। लक्ष्मण-पत्नी का वाक्य भी कम कमजोर नहीं है—'ब्याज सहित ऋण भर दूँगी मैं'। पुनः सखियाँ यशोदा से कहती हैं—

ए जसोदा मइया, चलकल बा ललना तोहार।
रोकि के डगरिया मोसे कइले मसखरिया, ए जसोदा मइया, जब जाईं जमुना किनार।

× × ×

हम हईं असल जनि जनिहें कम असल,ए जसोदा मइया टीकल नइखे बेसवा बजार।

चटोरे हृदयों के लिये, आशा है, 'चलकल' की चाशनी काफी होगी। 'टीकल' शब्द के दो अर्थ होते हैं—एक सिन्दूर से 'टीकल', दूसरा वेश्या के बाजार में 'टीकल'। यहाँ अर्थ होगा बसना, ठहरना। प्रेम-लीला में रार बढ़ती जाती है, झगड़ा कभी समाप्त नहीं होता, सखियाँ यशोदा को नित्य जाकर उलाहना देती हैं—

(क) पनिघट पर फोरलन गगरी हमार।
(ख) जसोदा जो हम ना बसबि तोहरा नगरी।
मोहन जो धूरी में फाना उड़ावेलन पनिघट पर फोरेलन गगरी।
(ग) तोहरो बेटा छैल चिकनिया। नान्हे से भइले किरतनिया॥
(घ) लवंग सोपारी उ त कहाँ से दो लललीन।
कोकचि कोकचि मोरा मुँह में ठुसललीन॥

(च) देह से हम बानी कमजोर। नाहीं त पूरा होइ त झकझोर ॥

(छ) जसोदा जी से टूट गइल आजुवे से नाता।
घर आँगन आपन चाहे अनकर तनिको ना हमरा सोहाता।

(ज) अइलन से कइलन तकरार। मोरन के नइखे डाटनहार ॥

(झ) छार बज के हुए नाता। पाछे से ई गीत गवाता ॥

(ट) नट नागर मोर सब गति कइलन।
अइलन अवाटी ना जगत में देखलीं, झट दे झटकि के परा गइलन।

(ठ) ई सब कवर सधा लेबि होखबि जो असले बून।

(ड) कवनो लाचसु तेल फुलेल अब ना होई मोहन से मेल।

(ढ) हमरा बनबि अब जसोदा के टोली।
झूठो के बबुआ पर थपरा उठाबेली ऊपर से बोलेली लीपल बोली।
मोरन के मनेमने माघ फागुन लउकता, हमनीं पर सब दिन बितावेले होली

(त) पनिघट पर गगरी फोरलन मोर।
जसोदा के बेटा मोहन मीठ बोलिया, भइलन नगर में चोर।

× × ×

गगरी फूटल कहाँ से आई ? कोहइनि मिलल मुँहजोर।
कहत भिखारी सनीचर के दिन होइ सँउसे गाँव के बटोर।*

भोजपुरी भाषा की खूबियों के दर्शनार्थ मैंने भिखारी के पदों से कुछ पंक्तियाँ ले ली हैं। 'धुरी में फान उड़ाना' या धूल में लोटर मरना एक ही बात है। अर्थ हुआ निज का ताड़ बनाना। छैल चिकनिया' अर्थात् मनचला युवक। 'कोकबि', मुँह भर। 'झकझोर' का अर्थ धक्का-मुक्की। 'अनकर' माने दूसरे का। 'छपर बद्ध', पड़ोसी। 'अवाटी' माने शरारती। 'झटकि के परा गइलन' देखकर याद हो आता है जो सूर ने शिकायत की थी 'बाँह छुड़ाए जात हो।' 'असल बून' मतलब असली माता-पिता से जन्मा हुआ। 'लीपल बोली', पालिस की हुई बात। माघ फागुन लउकता' माने बोली, ठिठोली, मजाक करना। 'हमनी पर सब दिन बितावेले होली' तो कृष्ण के लिये कुछ ऐसा ही है जैसा कि—'सदा दीवाली संत घर होली बारह मास'। इस 'मीठबोलिया' की जितनी प्रशंसा या शिकायत की जाय, थोड़ी ही है। 'मुँहजोर' का मतलब जोरदार मुँह वाली अर्थात् झगड़ालू। सखियाँ इस प्रेम के झगड़े को शान्त करने के लिए शनिवार का दिन मुकर्रर करती है। लीला बिहारी

* शनिवार को ही भिखारी का निधन हुआ और भक्त और भगवान् के झगड़े का निबटारा हो गया था। १० जुलाई, १९७१ ई०, शनिवार चार बजे शाम को। यह पंक्ति भक्त कवि की भविष्यवाणी थी।

की लीलाओं का अन्त नहीं है। शनिवार के दिन ब्रज में सभी एकत्र होते हैं और सभा होती है, बूझ होता है—

एह झगरा पर मरजी करीं बाबू भइया, बड़े छोटे नीके देखीं एह झगरा के बूझ।
नीके देखीं एह झगरा के बूझ ब्रजवासी, नाहीं त जाके बसबि हम अजोध्या चाहे कासी।

× ×

अइसन अनरीति कबना मुलुक में चलत बाटे बेटा के पछ कके हमनीं के सिखावेली।
कहत भिखारी सबका देखे में चीकन बाड़ी, झगरा करसु ना इ झगरा करावेली।

'चीकन' का अर्थ होता है साफ-साफ। सखियाँ कहती हैं कि यशोदा स्वयं झगड़ा नहीं करतीं; अपितु बेटा को उकसा कर रोज झगड़ा करातीं हैं। गोपी-कृष्ण लीला तो सर्वत्र कृष्ण-भक्त कवियों द्वारा अंकित है; किन्तु, यहाँ भिखारी द्वारा प्रस्तुत लीला में एक ही विशेषता है कि राधा-कृष्ण झगड़े में शनिवार के दिन समूचे गाँव का बटोर होता है। (अधिकांशतः भोजपुर इलाके में पहले ऐसा ही होता था)। ब्रजवासियों के सामने विचारणीय प्रश्न उपस्थित होता है कि यशोदा जी स्वयं 'झगरा करसु ना, ई झगरा करावेली'। यदि इसका उचित न्याय ब्रजवासी नहीं करेंगे तो सखियों का फैसला है कि 'नाहीं त जाके बसबि हम अजोध्या चाहे कासी।' यशोदा, जब 'बेटा के पछ क के हमनीं के सिखावेली' तब यह समस्या आती है। यह झगड़ा नहीं एक प्रकार से प्रेम की रगड़ है, जो कभी बन्द होने को नहीं और जिसका कोई फैसला नहीं किया जा सकता। होली वर्ष में एक दिन के लिये आती है और सखियों पर कृष्ण कृपा कर 'सब दिन बितावेले होली।'

कृष्ण-लीला का भजन-कीर्तन तो भिखारी करते ही थे। इससे भी आगे कृष्ण-लीला के नाटक में वे स्वयं भी प्रमुख भाग लेते थे। सखियों की उल्लिखित सारी दलीलें स्वयं अपने श्रीमुख द्वारा नाटक में गरज-तड़प कर कहा करते थे। उनकी सारी पोशाकें उस समय ब्रज की सखियों की पोशाकों जैसी होती थीं और उन्हें पहचानना मुश्किल हो जाता था कि बूढ़ा भिखारी मर्द है या औरत। उस दिशा में वे कुशल लोक कलाकार थे। यहाँ तक तो संयोग शृंगार का वर्णन हुआ। मगर याद रहे कि ये सारी लीलाएँ कृष्ण की किशोरावस्था की हैं। इन लीलाओं का प्रमाण भागवत है और भागवत के आधार पर शेष सभी कवियों की कृतियाँ अवलम्बित हैं।

यहाँ विप्रलम्भ का वर्णन भिखारी का विषय नहीं था। उनका कोमल कलेजा इसे लिखने में असमर्थ था। अपने एक गीत में उन्होंने वियोग के दुस्सह विषय का तनिक स्पर्श किया है: दान-लीला, मान-लीला, चीर-हरण, रास, पनघट-प्रसंग प्रभृति सब कुछ समाप्त करके कृष्ण सदा के लिये वृन्दावन से प्रस्थान कर जाते हैं।

अक्रूर के साथ प्रथम मथुरा जाते हैं और वहाँ वे कुब्जा के प्रेम में फँस जाते हैं। पता नहीं कि यह कुब्जा भक्तिमती शबरी है अथवा मंथरा, जिसकी मरम्मत शत्रुघ्न द्वारा हुई थी।

भोजपुरी की कहावत है—'काठो के सवति ना भावे'। भिखारी की सखियाँ वियोग के, विरह के पहाड़ जैसा दुःख सहने के लिए राजी हैं; मगर, कृष्ण की एक ही कारबार उन्हें सह्य नहीं। वह यही कि कुब्जा से कृष्ण का प्रेम करना। सूरदास जी की गोपिकाएँ कृष्ण के प्रेम-बाण से बिधी हैं। मगर भिखारी की सखियाँ कृष्ण-कुब्जा-प्रेम के बाण से (सवतिया डाह से) घायल हैं। क्या राशि सटीक बैठी है—कृष्ण और कुब्जा। कोई कवि लिखता है—

जैसे को तैसा मिले, तबहीं जुटत सनेह.
ज्यों त्रिभंग तनु स्याम के, कुटिल कूबरी देह॥

'उधर 'खंडित त्रिभंगी', इधर 'कुटिल कूबरी' देह। कृष्ण के टेढ़ापन को लेकर परमानन्द उनके स्वरूप, उनके क्रिया-कलाप का दिग्दर्शन कराते हुए लिखते हैं—

गिरिधर सबहि अंग को बाको।
बाँकी चाल चलत गोकुल में, छैलछबीलो काको?

यह टेढ़ापन और बाँकपन आगे चलकर ऐसा हो गया कि गोपियों ने उद्धव से निवेदन किया—'अब कैसे हूँ निकसत नहिं उधरी तिरछे ह्वै जु अड़े'। इधर भिखारी सखियों के स्वर में स्वर भर कर कराहते हैं—

लागल बा कुबरी के तीर, करेजवा में।
कर धरि धनुष कुरूप मूरति के हो गइनी बड़ा गोधीर
जहर घोर मुसुकान मोहन के, भींजल बा सकल सरीर।
जा ऊधो अतने सुधि कहिह, तनिको सहात नइखे पीर।
कहत भिखारी बिहारी ना अइले, फुटि गइले तकदीर।

धरती हमें पताल खिलाइs !

वेद व्यास के हृदय में लिखने के लिए इतनी सामग्री थी कि उन्हें लिपि बद्ध करने में वे असमर्थ थे। ब्रह्मा ने गणेश का आवाहन किया। गणेश आ गये। विचक्षण लेखक (Fast writer) गणेश और व्यास (वक्ता) के बीच शर्त हुई। गणेश ने कहा कि यदि व्यास बोलने में रुक जायेंगे, तो वे लिखना बन्द कर देंगे। व्यास ने कहा कि यदि बिना समझे-बूझे गणेश लिखेंगे, तो वे बोलना बन्द कर देंगे। इसी शर्त पर महाभारत जैसा सुविशाल ग्रन्थ का प्रणयन प्रारम्भ हुआ। उसके प्रत्येक अध्याय में एक दुरूह कूट श्लोक व्यास ने इसलिये दे दिया है कि गणेश को समझने में कुछ समय लग जाय और उतने समय में आगे के लिये एक अध्याय तैयार हो जाय। इतना बड़ा कलेवर शायद विश्व की किसी भी पुस्तक का नहीं है। महाभारत का जैसा नाम है, वैसा ही उसका गुण है। उसे महाकाव्य न कहकर यदि प्राचीन महान् इतिहास कहा जाय, तो कोई अत्युक्ति न होगी। अस्तु।

सभी पौराणिक कथाओं में से छाँटकर भिखारी ने कोमल तथ्य का ही प्रकाशन किया है। मानव-हृदय के कोमल तन्तुओं को झंकृत करनेवाली बात की चर्चा भिखारी की कृतियों में पायी जाती है। जैसे भागवत में से ललित लीला उन्होंने ली है, वैसे ही महाभारत में से द्रौपदी की करुण-पुकार को उन्होंने अपने काव्य में स्थान दिया है। महाभारत में आयी हुई गीता तक भिखारी को पसन्द नहीं। पसन्द है—एक नारी की हृदय-द्रावक तस्वीर। गीता में आया है—'आर्त्तो जिज्ञासु अर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।' उदाहरणस्वरूप ज्ञानी भक्त प्रह्लाद हैं। जिज्ञासु भक्त उद्धव हैं। अर्थार्थी भक्त ध्रुव हैं। आर्त्त भक्तों में द्रौपदी का नाम अग्रगण्य है। इसी पर जोर देते हुए हरिऔधजी ने लिखा है—'जी से बात सकल सुनना आर्त्त-उत्पीड़ितों की।' सीता का जन्म पृथ्वी से हुआ था द्रौपदी का जन्म अग्नि से हुआ था। द्रौपदी अग्निदेव की पुत्री थी। चारों युग के इतिहास में द्रौपदी के समान दुखिनी नहीं दीखती। सभा के बीच में नारी को नंगा किया गया हो, ऐसा युग द्वापर ही था। तारीफ तो यह है कि उस सभा में द्रौपदी के पाँचों वीर पति विद्यमान हैं। गुरु द्रोण, पिता तुल्य (श्वसुर) धृतराष्ट्र तथा पितामह गंगा-पुत्र बाल ब्रह्मचारी आठवें वसु के अवतार अतिरथी वीर भीष्म जिनकी मृत्यु इच्छा पर निर्भर थी, भी उपस्थित हैं। ऐसे भरे दरबार में भिखारी की द्रौपदी टेरती है—

अबकी राखि लऽ सरकार ।
दुरजोधन धन पाइ गरब में, छोड़सु सकल बिचार ।
बरियारी से सारी खिचावसु, हँसेला सब परिवार ।
अरजुन भीम धीम हो बइठसु, पाँचों कुंति कुमार ।
कौरव बंस कंस निरबंसन ! परदा करत उघार ।
अंधपूत जमदूत भूत सम, खुशी होत ललकार ।
पाँच के साँच आँच नहिं मानत, सौ भाई पटिदार ।
द्रोनाचारज, करन, भीषम सब, बइठल रहसु निहार ।
हे भगवान बान ले धावऽ, द्रौपदि करति पुकार ।
लगी डांड़ सब छूटि गइल बा, टूटि गइल पतवार ।
आर पार दुनों छूटि गइल बा, नइया बा मझधार ।
हे ब्रजराज लाज अब राखऽ, जसुदा नंद दुलार ।
डूबति नाव अन्याय द्रोझ से, तूँ हो खेवनहार ।
कुंभकरन रावन के मारन गज कारन धरियार ।
कंस पछारन, संत उबारन, टारन धरती भार ।
गनिका गीध, अजामिल सेवरी, सूअर, सदन, चमार ।
अधम उधारन जन के कारन, धरत रहत अवतार ।
कहत भिखारी दुष्टन के दल के, करऽ बिहारी बिहार ।
कृपा-सिंधु बंधु लछुमन के सुनि लऽ अरज हमार ।

भिखारी की द्रौपदी का यही कारुणिक चित्र है । एक तरफ आसुरी सम्पदा का नग्न नृत्य है । दैवी सम्पदा दूसरी ओर बचनबद्ध होकर मूक है । अंधपूत जमदूत भूत सम' मारे आह्लाद में प्रसन्न हैं । महाबली 'अरजुन भीम धीम' हैं । लड़ाई सौ से पाँच की है । यही महाभारत की कथा है और उसका रहस्य है । इस लड़ाई के मूल में द्रौपदी का करुण-क्रंदन है । उसकी विषम परिस्थिति है । विवशता और लाचारी की साक्षात् मूर्ति बनकर द्रौपदी चिल्ला रही है, चिल्लाती जा रही है । उसकी '—खसी डांड़ सब छूटि गइल बा, टूटि गइल पतवार' । दोनों किनारे भी उससे छूट गये हैं और उसकी जीवन की, मर्यादा की नौका मझधार में पड़ी हिलोरे खा रही है । सभा के लोग बैठे तमाशा देख रहे हैं । दुर्योधन के सामने बोलने की किसी की ताकत नहीं । द्रौपदी कृष्ण को पुकार रही है । कृष्ण उसके भाई भी लगते थे । मगर भाई कृष्ण से द्रौपदी को क्या मतलब ? वह तो उस कृष्ण को पुकारती है, जो कृष्ण अपने भक्तों के लिए अनेक रूप धारण करते हैं । उनका राम रूप भी है—दुष्टों का विनाश करनेवाला रूप । रावण कुम्भकर्ण जैसे अमित तेजस्वी

और अद्भुत पराक्रम वाले असुरों का विनाश राम ही द्वारा हुआ है। राम 'अधम उधारन' हैं और दीनबंधु कृपा-सिंधु हैं। उन वीर लक्ष्मण के भाई राम रूपी कृष्ण को द्रौपदी गुहरा रही है।

जिस समय द्रौपदी की टेर द्वारका में पहुँची है उस समय रुक्मिणी के साथ सचमुच बिहारी जी विहार में ही निमग्न थे। अचानक चौंक कर उन्होंने महा परेशानी से कहा कि उन्हें द्रौपदी आर्त होकर पुकार रही है। पट्टमहिषी ने आज्ञा दी 'जाइये'। लेकिन बिहारी जी पुनः, खेल में व्यस्त हो गये। दूसरी बार वही पुकार गई। कृष्ण चौंके। रुक्मिणी ने वही बात कही। रुक्मिणी ने आज्ञा दी, लेकिन कृष्ण नहीं आये। तात्पर्य यह कि द्रौपदी की पहली पुकार में उसे आशा थी मदद की अपने पतियों से, गुरजनों से तथा स्वजनों से। मगर उस आशा पर पानी फिर गया। द्रौपदी की दूसरी पुकार में उसने अपना सारा बल साड़ी पकड़ने में लगा दिया था। मगर उसकी तीसरी पुकार ही वास्तविक पुकार थी। यही होता है। जबतक दूसरे का आसरा भरोसा बना हुआ है, तब तक हमें प्रभु की सहायता नहीं प्राप्त होती। जब हम निराश्रय होकर, असहाय होकर, सच्चे दिल से भगवान् को पुकारते हैं तो वह प्रभु झट विद्यमान हो जाता है। सच्ची प्रार्थना में एक अद्भुत शक्ति है। भगवान् को प्राप्त करने के लिए सच्चे हृदय की प्रार्थना के सिवा दूसरा कोई साधन नहीं है।

अंगद-रावण संवाद को आचार्य शुक्ल जी ने भद्दा ठहराया है। वह संवाद सभा के गौरव के अनुकूल नहीं है। इधर दुर्योधन की सभा को किस श्रेणी में रखा जाय? अपने कुल की एक अबला सभा में खड़ी है। उस पर जुल्म की, अत्याचार की पराकाष्ठा पहुँच चुकी है। एक ओर दसहजार हाथी का बल वाला है दुःशासन और दूसरी ओर है एक अबला। वीर दुःशासन उस अबला का चीर खींच रहा है। द्रौपदी भगवान् को टेर रही है। चारो ओर से निःसहाय निराश्रय होकर द्रौपदी पुकार रही है, टेर रही है, गुहरा रही है—

अब पति राख- गोबरधन धारी। दुसमन खींचत चीर हमारी।
छत्री-बंस बिधंस हो गइलन, सभा में कलपति नारी।
ससुर, भसुर, पति, देवर जाउत, सब बइठल मन मारी।
पैर में पीर सरीर दुखित बा, मासिक करम लचारी।
दुःसासन दुरदसा बनावत, दुरजोधन ललकारी।
सब अपना सपना हो गइलन, नाहक जाल पसारी।
धरती हमें पताल खिलादः, आपन करेजा-फारी।
कहत बिहारी हमारी माफ कर, सब अवगुन त्रिपुरारी
दया के सागर परम उजागर, अधम से लेहु उबारी।

द्रौपदी की दयनीय दशा। कनिष्टिका के नख पर सुविशाल गोवर्धन पहाड़ को धारण करनेवाले से प्रार्थना। कारुणिक प्रार्थना। रोती-बिलखती अबला की प्रार्थना। उस सभा में कौन नहीं है? श्वसुर हैं, भसुर है, पति है, देवर है, भतीजे हैं। सभी हैं। मगर कोई नहीं है। द्रौपदी के काम में आने वाला कोई नहीं है। लगता है, संसार में माया का यह 'नाहक जाल' फैला हुआ है। राज-पुत्रों की सभा है। क्षत्रपतियों की सभा है। जैसे मालूम होता है, द्रौपदी के लिये सभी मर गये हैं। वस्तुतः कोई जिन्दा था भी नहीं। भगवान् काल के उदर में सभी प्रवेश कर गये थे। इसकी झाँकी कृष्ण ने अर्जुन को लड़ाई से प्रथम ही दिखा दी थी। उस समय द्रौपदी को कुछ विवशता भी थी—'मासिक करम लाचारी' थी। उसके 'परमें पीर सरीर दुखित' था। ऊपर से दुर्योधन की ललकार और दुःशासन द्वारा उस ललकार का कार्यान्वित होना। सीता की गर्भिणी अवस्था के निष्कासन का परिणाम लवकुश द्वारा अयोध्या वासियों का मान-मर्दन है और मासिक धर्म से विवश द्रौपदी को सभा में घसीटने का नतीजा अठारह अक्षौहिणी सेना का संहार है।

रामायण के मूल में सीता है और महाभारत के मूल में द्रौपदी। वह अग्नि-पुत्री है। सीता पृथ्वी-पुत्री। सीता को जब कभी विश्राम मिला, तो अग्नि में। राम ने पंचवटी में एक बार सीता को अग्नि में रख दिया। आवश्यकता पड़ी तो सहर्ष सीता लंका के प्रांगण में अग्नि में प्रविष्ट हो गई। पुनः निकल भी आई। इधर अग्नि-पुत्री विश्राम के लिये पृथ्वी में प्रवेश करना चाहती है, भिखारी के शब्दों में—

धरती हमें पताल खिलाद: आपन करेजा फारो !

रखिहऽ चरन के सरनऽ !

'धन्य सुदेस जहाँ सुरसरी !' और, यह गंगा क्या आज की है ? अनादि अनन्त काल से यह देवाधिदेव महादेव की जटा से छूट कर मेदिनी-मण्डल को पावन पवित्र करने के लिये उतरी है। असंख्य जीव इनकी प्यार भरी गोद में शान्ति पा चुके या रहे और पाते रहेंगे। वैज्ञानिकों की दृष्टि में भी गंगा का महत्व कम नहीं। हरिद्वार तक का गंगा जल तो दूध की तरह लाभदायक होता है। जगद्धात्री माँ का यदि आज कोई स्थूल प्रतीक है, तो वह है गंगा। ठीक ही है—मङ्गल, पान, पाप हर एका'। 'सुरसरि सम सब कहँ हित' करनेवाला संसार में अन्य कोई पदार्थ नहीं। इसी की चोट घोषणा हुई है—'स्रोतसामस्मि जाह्नवी'।

क्या खूबी के साथ जैसे त्रिदेवों में एक सारूप्य उपस्थित करती है गंगा। विष्णु के चरण-कमल की पखारी हुई, ब्रह्मा के कमंडल में निवास करनेवाली तथा शंकर की जटा में लुप्त-प्राय होनेवाली गंगा। इतना ही नहीं, इससे भी आगे मानसरोवर से गुजरनेवाली, जह्नु जा तथा भागीरथ-नन्दिनी। इस प्रकार क्रमशः जल राशि के राजा सागर तक पहुँच कर उनके साठ हजार आत्मजों को धन्य करने-वाली माँ गंगा। एक समस्या, एक प्रश्न उपस्थित हो उठता है—'नदी पुनि गंगा ?'

प्रातः काल ब्राह्म मुहूर्त में, जब आकाश नक्षत्रों से युक्त जगमगाता रहता है, क्या आपने कभी गंगाजी में गोता लगाया है ? यदि लगाया है तो आपके हृदय के कोमल तन्तुओं में, एक अजीब तरह की गुदगुदी की, एक कोमल मसृण, मधुर रस की अनुभूति नहीं हुई है ? क्या गोता लगाते ही ऐसा नहीं प्रतीत हुआ है कि समस्त शरीर के साथ हृदय भी उस ब्रह्मदेव में विहार करने लगता है ? श्रद्धालुओं के निकट तो गंगा-स्नान अपना एक विशिष्ट स्थान रखता ही है। गंगा-स्नान का महत्व नगर निवासियों के निकट कम, पर देहात और गाँवों में बसनेवालों के पास तो अधिक होता है। देहात से जनता कोसों पैदल चलकर पर्व-त्योहार के दिन गंगा तट पर आ जाती है और गंगा-स्नान द्वारा मानसिक शान्ति लाभ उठाती है। गंगा-स्नान की प्रवृत्ति और रुचि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक मात्रा में पाई जाती है। भिखारी ने देहात की स्त्रियों की उस रुचि को पकड़कर ही 'गंगा-स्नान' का निर्माण किया है। स्त्रियों में गंगा स्नान की कितनी उतावली होती है, कितनी तैयारी होती है, झांकी लीजिए—

चलऽ गोरिया करे गंगा असनानं ।
सारी चोली पेन्हिकर सब अभरनवां; तेहि पर सोभे सोना चानी के गहनवां ।
गते गते बोलऽ ना त सुनी मरदनवां; खाये खातिर बान्हऽ नून सतुआ पिसनवां ।
बनेनऽ बनालऽ झटपट पकवनवां; मीठ रस चाहीं कुछ राह के भोजनवां ।
सुरसरि जल भरि हरि दरसनवा, करी के भिखारी कहे घुरे के मकनवां ।

यह चित्र आज से कुछ दिन पहले का है । उस समय इसी प्रकार की तैयारी होती थी ।

गंगा-स्नान की यह तैयारी आरा, बलिया या छपरा की नारियों की है क्योंकि, बाहर जाने के समय वे महिलाएँ अपने सारे वस्त्र और आभूषण पहन लेती हैं । भोजपुरी भाषा-भाषी क्षेत्र की महिलाओं में, जोरदार चलन है, पहनने का 'सोना चानी के गहनवा' । 'गते गते बोलऽ'—भोजपुरी का एक चुलबुला मधुर शब्द है, जिसका अर्थ होता है धीरे-धीरे बोलना । सम्भवतः समय है स्नान का 'सतुआन' वाला क्योंकि, 'खाये खातिर बान्हऽ नून सतुआ पिसनवां' । विशेष बात तो यह है कि सत्तू इस क्षेत्र का मुख्य आहार जो है । इसके द्वारा अनेक प्रकार के भोजन तैयार हो जाते हैं । यह कहिये कि सत्तू खोर देश ही है, सो नहीं । महिलाओं द्वारा निर्मित 'मीठ रस' 'पकवान' पर भी नजर रखिये । घर के धुरपों से डरती रहती है यहां की स्त्रियां । अतः गुप्त रूप से तैयारी करती है—

चलऽ सखी करे गंगा तीर असनान । चूपे चलनुके बान्ह नून सतुआ पिसान ।
बलमु जो सुनिहन त जरि मरिहन । भोरे तीरउ के जतरा पर मानी करिहन ।
गली के रहता से निकलि चले के । राह बाट में गावत गीत मजा करे के ।
कहत भिखारी धर गंगा पर धेयान । भूली सब दुख खुलि जाई अकिल गेयान ।

'जरि-मरिहन' का अर्थ होता है अत्यधिक क्रोधित होना । 'गली के रहता' 'Back door' को कहते हैं, जो प्रत्येक घर में महिलाओं के आवागमन के लिये होता है । यहां भिखारी उन 'मजा' करनेवाली महिलाओं को होशियार करते हैं—'धरऽ गंगा पर धेयान' । दोनों प्रकार की महिलाएँ हैं 'सुरसरि जल भरि हरि दरसवा' भी हैं, जिन्हें लौटते समय—'कत सुख सार पावब तुअ तीरे, छाड़इत होहे नयन बह नीरे' । गंगा तट जाते ही दुःख भूल जाता है । वृत्तियां अखण्डैक रस में जा डूबती हैं । भीतर का देवता अन्तर् का दर्शन करने लगता है । जी में आता है कि यहां अधिक-से-अधिक समय बीते । भीतर-बाहर एक अद्भुत पवित्रता का संचार होने लगता है ।

भिखारी के 'गंगा-स्नान' नाटक का प्रधान पात्र है—मलेछु । भिखारी पात्रों का नाम ही इतना सटीक रखते हैं, जिससे उनके चरित्र की अभिव्यक्ति हो जाती है ।

मलेच्छ वस्तुतः म्लेच्छ है, मगर उसमें मातृ-भक्ति है। सच पूछिये तो उसकी पत्नी वस्तुतः म्लेच्छिणी है, जो अपने राग-रंग के सिवा दूसरी बात नहीं जानती। वह मलेछू-पत्नी महलियों के साथ गंगा-स्नान के लिये तैयार होती है। इधर मलेछू अपनी माँ को भी गंगा-स्नान करा देना चाहता है। इस पर पति-पत्नी में एक विवाद खड़ा होता है। पत्नी खुले शब्दों में अस्वीकार करती है—'बुढ़िया जाई तहाँ ना जाईब'। मलेछ प्यार से समझाता है—

मानऽ मानऽ बचनियाँ हमार जनिया !
तन से आ मन से हम धन से तोहार; कहबू से करब ना होई इनकार।
सेवा करबू माई के त मिली फेरु चार; अरथ धरम काम मोछ, बरियार।
प्यारी सहऽ दुख राखऽ बनरी के पनिया। मानऽ

पत्नी मलेछू को दुतकारती है—

हँसी दुनिया तेकर सहबे तसिको फिकिर; पाजी करबे तँ दुनिया के हरदम जिकिर।
सहल जात सहबे खीस मन में उपटल भीतर; कहे लाऊ भिखारी फटत बा तेतर।
तोरा हरिखा पर खा के मरबि कनिया। मानऽ

भिखारी द्वारा व्यवहृत 'कनिया' शब्द 'जैसन श्याम नंद की कनिया' नहीं है और न कन्या का ही कोई रूपान्तर है। वह हीरे की कनी है—'जो रखती हो मूल्य मारकर भी'। अतः एक लम्बे विवाद के पश्चात् पति और पत्नी में सुलह होता है। तब वे तीनों गंगा-स्नान के लिये रवाना होते हैं। गंगा-तट पहुँचकर स्नान प्रारम्भ होता है और मलेछू द्वारा उसकी माँ गंगा में फिसल जाती है। मलेछू की पत्नी उसे बचाने का प्रयास न स्वयं करती है, न मलेछ को ही करने देती है। अन्ततः बुढ़िया किनारे लगती है और अपने पुत्र मलेछू के लिए विलाप करने लगती है—

अपना बबुआ में, लागल बा आसरा हमार।
सुन बबुआ बात पहिला, गाँव घर कहे बहिला; तब कइलीं छठ एतवार।
नवमास रहल भीतर, तब पुजलीं देवता पीतर; भइल त पिअल दूध के धार।
कइला के गुह सूत, कइल बिआह पूत देत आड़ बनरा के मार।
देह में लगवलीं तेल, धार में देलऽ ढकेल; भइल पतोहिया घरियार।
× × ×
कहे कुतुपुर के बासी, झूठो के जइबऽ कासी; कइलऽ भिखारी के भिखार।

माता की ममता अपने पुत्र के लिये कम नहीं होती। जब उसे पुत्र नहीं था, तो उसे 'गाँव घर कहे बहिला'। उसका व्रत पुत्र-प्राप्ति के लिए अहर्निश चलता रहा। नौ मास के पुत्र-वहन का समय आया, तो माँ 'पुजलीं देवता पीतर'। पुत्रोत्पत्ति के बाद 'पियल दूध के धार' और 'देह में लगवली तेल'। सारा-का-सारा

कार्य माँ की आँखों के सामने याद आ रहा है और वह बिलख रही है। उधर माँ गंगा तट की भीड़ में अलग बिलख रही है और इधर एक साधु आकर मलेछू-पत्नी को पुत्र देने के लिए उसे कहीं एकान्त में लेकर चला जाता है, जहाँ पर मलेछू-पत्नी प्रथम उससे विनय करती है—

ए मोर साधु बाबा ! जिनगी भर भजबि तोहार नाम।
रुपया लुटाइबि बेचि के देही परके चाम, ए० जहिया जनमिहन एक गुलाम।
हुकुम के मोताबिक जुटी सब सरजाम ए० चाहे खरचा लगिहैं जतना दाम।
नइखे हमरा सोना चानी अन धन के काम, ए० कोखिया करबलसि बदनाम।
एक पुत्र बिना भइल दाहा पहलाम, ए० धधकत बाटे धरती धाम।

गंगा-तट पर स्नान के मेले में ऐसे अनेक साधु मिलते हैं, जो महिलाओं को एकान्त में ले जाकर पुत्र दिया करते हैं। काशी-वासी 'प्रसाद' की तरह ही गंगा तट के 'रहबइया' भिखारी की पैनी निगाह में भी ढोंगी साधु लोग रहे हैं। भिखारी का 'गंगा-स्नान' ठीक 'कंकाल' के अनुरूप उतर गया है। जिस प्रकार मंगल अपनी माँ से पृथक् हो जाता है, उसी प्रकार मलेछू अपनी माँ से। जिस प्रकार यमुना से मंगल अलग हो जाता है, उसी प्रकार मलेछू अपनी पत्नी से। 'कंकाल' और 'गंगा-स्नान' खोये हुए का खजाना है और हैं ढोंगियों और ठगों का खजाना। मलेछू-पत्नी का सर्वस्व धन और गहना हरण कर वह साधु चपत हो जाता है। मलेछू की माता एक ओर रो रही है तो एक ओर उसकी पत्नी। माँ बिलख कर कहती है—

कइली पर घर के असरा मतारी।
× × ×
हालत भइल सोहराई के सुअर के, जेकरा जवान बेटा चारी।

मलेछू की माँ की दशा 'सोहराई के सुअर' की-सी और पत्नी की दशा—

(क) गइलन हो बलम अखड़ेर जनवा।
पति अपमान जान पर पहुँचल, परि गइल सासु के कलपनवा।
मेला के बीच अकेला परल बानी, ठग लेके भागल सब धनवा।
उतरल गहनवा बहनवा करबि का ? भइल भेयावन हमार तनवा।

(ख) ए मोर सासु जी हो। कवना नगरिया दिहलू चल।
उतरल गहनवा धनवा सिकरी जोसनवा, ए० मोर सासु जी हो।
× × ×
करऽ माफ सासु सँइया, परत बानी पँइया, ए० अब ना करबि केहु से छल।
× × ×
कहत भिखारी नाई, ढोलक बजाई, ए० इहे मेला घुमनीके हऽ नकल।

मलेछू पत्नी पर 'पति अपमान' और 'सासु के कलपनवा' दोनों एक साथ ही पड़ जाते हैं। वह कराह उठती है। बारी बारी से पति और सासु से अलग-अलग विलख कर विनय करने लगती है। स्वयं उसीका शरीर उसे काटने दौड़ता है। वह मेला में अपने को अकेला पाकर सन्न रह जाती है। सूख जाती है। भिखारी मेला घूमनेवाली औरतों का यह नमूना पेश कर समाज को सावधान करते हैं।

आखिर मलेछू को औरत मिलती है और वे दोनों बुढ़िया माँ की तलाश करते हैं। एक पेड़ के नीचे बैठी बुढ़िया अपने बुरे दिनों को कोस रही थी कि अचानक मलेछू का ध्यान उस ओर पड़ जाता है। पत्नी सहित मलेछू उसके पैरों पर गिरकर क्षमा-याचना करता है। उसे पुनः लेकर तीनों घर वापस आते हैं। नाटक का अन्त भिखारी ने सुखान्त किया है। भिखारी की कृतियों में सामाजिक कुरीतियों की कड़ी आलोचना मिलती है। धार्मिकता की आड़ में जो कुछ पाप हो रहा है उसका बीभत्स दृश्य भिखारी अंकित करते हैं। इस नाटक का अन्तिम पद, जिसमें मलेछू का प्रयास और प्रायश्चित दोनों इस प्रकार है—

होइहें कवना बन में मतारी।
मेहरी के हेतु मातु के निकललीं से कइलवि जमामारी।
मोर कसूर माफ कर माता, कइलीं बहुत हतेयारी।
खोजत खोजत मोर पैर घिरइले, देत नगर भर गारी।
मइया के चरन में सीस नवावत, छपरा जिला के भिखारी।

मलेछू प्रायश्चित करता है। जीव जब चारों ओर से ठोकर खा लेता है तो उसे प्रायश्चित सूझता है। पश्चात्ताप की गंगा में स्नान कर जीव पुनः पवित्र हो जाता है। पश्चात्ताप के सिवा जीव के लिए दूसरा कोई चारा भी नहीं है। मलेछू पश्चात्ताप द्वारा अपना मार्जन कर पुनः सुखी हो जाता है। भिखारी भी अपनी हार्दिक कामना और भावना को मलेछू के साथ ही व्यक्त कर देते हैं—'मइया के चरन में सीस नवावत, छपरा जिला के भिखारी।'

भिखारी की मातृ-भक्ति की वास्तविकता नाटक के अन्त में निखर जाती है, जिसे देख सुनकर हृदय धन्य हो जाता है। भिखारी का गंगा-स्नान नाटक चार बजे भोर में समाप्त होता था। ऐसे समय में उसे वे दिखाया करते थे कि देखनेवाले वहाँ से उठकर चट गंगा स्नान कर लें अथवा उसी को गंगा-स्नान समझकर अपने को पवित्र कर लें। रात भर दूसरे-दूसरे नाटक अपने अभिनय में दिखाते थे, मगर जब भोर होने को आता था, तो वे गंगा-स्नान प्रारम्भ करते थे। ऐसा विधान उन्होंने बहुत सोच समझकर बनाया था। जिन व्यक्तियों ने उनके अभिनय में भाग

लिया है वे इस बात को भली-भाँति जानते हैं। गंगा-स्नान का ब्राह्ममुहूर्त भिखारी जानते थे।

गंगा का महत्व जितना भिखारी जानते थे, बहुत कम लोग जानते होंगे। गंगा के तट पर ही जिनकी सारी जिन्दगी गुजर गई थी। उससे बड़ा संत दूसरा कौन है। गंगा किनारे जन्म, वास और रहबट। गंगा से वे थोड़े क्षण का भी वियोग नहीं चाहते थे। गंगा का सामाजिक चित्रण आपने देखा; मगर गंगाका अपना महत्व अपनी जगह पर है। गंगा-स्नान करनेवाले सभी न मलेछ हो सकते न ढोंगी संत ही। गंगा का धार्मिक महत्व ज्यों-का-त्यों आज भी बना हुआ है। अतः भिखारी गंगा मइया के सामने विनत होकर बारम्बार यही याचना करते हैं—

ए मोर गंगा जी हो, रखिहऽ चरन के सरनऽ '*

कुछ ना कइलीं बरत, बानी पर धन हरत ए० सब कुछ बगवल बा रहनऽ।
मन बउरइलन लालच मद में बरि गइलन, ए० नर तन पाइ के रतनऽ।

× × ×

इहे बा भरोस जनम भूमि बा परोस, ए० कवनो विधि हो जाइ तरन।
जब जब होखे जनम जोनी जवन करम, ए० तहां तहां दीह तूं दरसनऽ।
कहत भिखारी दास भारी बा तरास, ए० जवना घरी घेरिहन जमगन।

---

* इस 'गंगा-स्नान नाटक' का रहस्य भिखारी ने निम्न प्रकार से खोला है—'मलेछू जीव, उसकी माता भक्ति तथा उसकी पत्नी माया है'। —लेखक

जनम जनम दीहः दरस

गंगा हरउ कष्ट विकार।
श्रवत हिम गिरि जगत पावन आई निकट हरिद्वार।
लहर जगमग जोति चमकत, बहत सीतल धार।
कतहुँ गहिरा रेत बालू, झउँआ झूर करार।
कतहुँ गाज चकोह बान्हत, कछ मछ धरियार।
कतहुँ कछर घोल माटी, परत होखत मार।
चढ़त चदरा, धूप, दीपक, केरा, नरियर, हार।
दरस, मज्जन, पान करते, होत अघ जरिछार।

× × ×

कहे भिखारी गाईं केहि विधि, महिमा अपरमपार।

'गंग अवनि थल तीन बड़ेरे' हैं:—हरिद्वार, प्रयाग और गंगा-सागर। जगत-पावनी गंगा हिमालय से चलकर सर्वप्रथम हरिद्वार में ही भूतल पर उतरी है। वहाँ की 'जगमग' ज्योति का वर्णन शब्दों का विषय नहीं। स्निग्ध जल दूध की तरह सफेद और लाभदायक है। धारा इतनी प्रखर कि उसमें तैरना मुश्किल—जरा-सी असावधानी से सिर फटने का भी डर। धारा के वेग में पत्थर के टुकड़े भी लुढ़कते आ रहे हैं। हरिद्वार से आगे का दृश्य कुछ और ही है। किनारों पर अधिकांशतः 'झउआ झूर' है और बीच-बीच में 'कतहुँ गहिरा रेत बालू' हैं। बरसात के दिनों में देखिये, तो 'कतहुँ गाज चकोह बान्हत कछ-मछ धरियार'। बरसात के बाद यदि आस-पास के खेतों में मिट्टी पड़ जाती है, तो उसके लिये आपस में मार-पीट भी होती है और गंगा के पूजन की सामग्रियों का क्या कहना? श्रद्धालु लोगों की ओर से 'चढ़त चदरा, धूप, दीपक, केरा, नरियर, हार'। इस प्रकार, जन्म-जन्मान्तर के पापों को गंगा धो डालती है—'दरस, मज्जन, पान करते' ही। गंगा की महिमा सब प्रकार से अगम-अपार है। गंगा-तट पर पैदा होनेवाली अन्य वस्तुओं के साथ ही मकई तक भिखारी के लिये वन्दनीय है। 'मकई' के गुणों की गाथा गाते भिखारी अघाते नहीं। उसके गुणों की माला बड़े ही प्रेम से गूँथते हैं—

मकइया ही तोर गुन गुँथब माला ।
भात से तरत भव, लावत गरीब लव, पूरा-पूरा पानी दिआला ।
भूजा भरि ओरि-ओरि, जहाँ तहाँ खोरि खोरि, खात बाड़न बाल गोपाला ।
धनि हउ धनहरा डाठा, खाले लगहर नाठा; लेढ़ा धोनसारी में झोंकाला ।
सातु सरिआई नून, खइला से सुखेला खून; साधु लेखा रूप बनिजाला ।
बारा गुर दही मन, कहि कहि कुरुन कुरुन; मुँहवाँ में माजा बुझाला ।
भट्टा भगवान से बिमान खास आइ जात; मन बैकुंठ चलि जाला ।
करत भिखारी खेला, सूरदास जइहें मेला; गंगा तीरे बहुते बोआला ।

'मकई' ही वह अन्न है, जो 'गंगा तीरे बहुते बोआला' । यह गरीबों के गुजर-बसर करनेवाला अन्न है । गरीब उसके 'भात से तरत भव' । लड़कों के लिये प्रिय है उसका 'भूँजा' । 'लगहर' लगनेवाली और 'नाठा' (नहीं लगनेवाली) दोनों प्रकार की गायों के लिये मकई का 'धनहरा डाठा' उपयोगी होता है । जिसमें दाना नहीं बैठता, वह 'लेढ़ा' भूँजा भूँजनेवाले 'धोनसारी' में झोंककर उससे जलावन का काम लेते हैं । नमक के साथ जो उसका सत्तू खाता है, उसका शरीर सूखकर 'साधु लेखा रूप बनि जाला' । जो दही-गुड़ के साथ उसके डारे (दरिया) का सेवन करता है, उसके सौभाग्य का हिसाब ही नहीं है । भट्टा पकाकर खानेवालों के निकट 'विमान' चला आता है, जिससे वे सीधे बैकुण्ठ में पहुँच जाते हैं । मगर जहाँ गंगा का अनेक प्रकार का महत्त्व है, वहाँ कुछ गंगा से क्षति भी पहुँच जाती है । एक समय की छपरे की गंगा की बाढ़ (दहार) भुलाये नहीं भूलती । उसका भिखारी यथार्थ वर्णन करते हैं—

सिरी महादेव सुत, पारबती जी के पूत; चरन-कमल गहि रोवतानी गंगाजी ।
जब गिरे लागल भीत, दुखवा के सुनीं गीत, पंच परमेस्वर से कहतानी गंगाजी ।
सुदी चतुरदसी रोज, बिअफे के कइलू खोज; गली-गली नली बहअवतु हो गंगाजी ।
तब भइल बाबा धाई, कवन करीं उपाई; बनवाँ अँगनवाँ में पहुँचल हो गंगाजी ।
हो गइल रहे रात, मिलल ना लरिका के भात; पनिया चुहनिया घुसल बा हो गंगाजी ।
मउगी गिरावे लोर, पिया गइलन मोर; बहरा दहरवा में परलीं हो गंगाजी ।
लागल बाटे छाह पाट, लरिका सुतल खाट; घर में रोवतवा दहात बाटे गंगाजी ।
बाकस उठत नाहीं, सब धन जेहि माहीं; चारू ओर ताकिला अन्हरवा हो गंगाजी ।
अपना परनवाँ करनवाँ में सब लोग; घर घर हरहर बहतु हो गंगाजी ।
घर में बाहर देखा, सब केहु एक लेखा; दुखवा के सुखवा तेयार भइल गंगाजी ।
तेरह सौ एकतालिस साल सावन पुरनवाँसीकाल; सुकवा के सुकवा लगवतु हो गंगाजी ।
अइसन बहार भइल, सतुआ पिसान गइल; सुरवा चलनिया दहात बा हो गंगाजी ।

छपरी प रोवत बानी, घर में अथाह पानी; पिलुआ भरल बाटे देह पर हो गंगाजी।
बकरी खिसार कहुँ, कुकुर सियार कहुँ, आदमी करे पुकार डूबत बानी गंगाजी।
गइया भईंसिया के हारवा दरारवा में, धारवा बाहरवा घींचत बा हो गंगाजी।
हेंकरत सब जात, मन पछतावा खात; धरती से धरचलि जात बा हो गंगाजी।
माइ बाप करे सोर नयना से गिरे लोर; बूध जुवा बाल नर नारी सब गंगाजी।
केहु कहे धन गइल, केहु कहे अन गइल; केहु कहे तन के ठेकान नइखे गंगाजी।
बेखला से सुनला से रोके सिर धुनला से; गुनला से कुछओ लिखात नइखे गंगाजी।

छपरे का यह भयंकर प्रलयंकारी दहार फसली सन् १३४१ ई० की श्रावण पूर्णिमा शुक्रवार को आया था। मगर एक दिन पहले बृहस्पतिवार से ही 'गली गली नली' बह चली थी। आँगन में समुद्र-सा बन गया था। पानी 'चूहानी' में घुस चला। परिणामस्वरूप भोजन बनाने के स्थान (चूहानी) में भोजन नहीं बन सका। 'लरिका के भात' तक खाने को नहीं मिल सका। जिनके प्रियतम परदेश गये थे, वे प्रोषित-पतिकाएँ कलपने लगीं। ऐसा भयंकर दृश्य देखते-देखते 'घर में आँगन' दहाने लगा। कहीं 'लरिका सुतल खाट' की चिन्ता, तो कहीं दौलत से भरा 'बाकस उठल नाहीं' की चिन्ता। यह दशा प्रायः प्रत्येक घर की हो गई। गंगा का प्रखर प्रवाह 'घर-घर हर-हर' बहने लगा। सत्तू सिमान (आटा) बह चला और 'सुपवा चलनिया' दह चला। पोसान घुलकर बह चला और सूप उतराकर दह चला। लोगों के सामने ऐसी कारुणिक समस्या आ गई कि छप्पर पर बैठकर लोग कराहने लगे। 'पिलुआ भरल बाटे देह पर' जैसा भी दर्दनाक दृश्य था। कहीं बकरी-खिस्सी बिलबिला रही हैं। कहीं 'कुकुर सियार' चिल्ला रहे हैं। कहीं आदमी डूब रहा है। झुण्ड-के-झुण्ड भैंस-गाय धारा में दहती जा रही थीं। उस दिन भिखारी छपरा झलन देखने गये थे। लौटकर आते ही गाँव-घर की हालत देखी। किसी प्रकार नाव का प्रबन्ध हुआ। जान बची। उनका टोला गुरुटेनगंज स्कूल पर जा बसा। वे स्वयं अपने मित्र शुकदेव ठाकुर (जुगुसपुर) के यहाँ ठहरे। उस दहार का दृश्य 'देखला से सुनला से रोके सिर धुनला से गुनला से कुछओ लिखात नइखे'। भोजपुरी में शब्द 'घींचत' ही है, खींचत नहीं। भिखारी के उपर्युक्त पद में सर्वत्र काव्यत्व का शृंगार है। अनुप्रास की तो सर्वत्र बहार है। गणेश-स्मरण से पद का प्रारम्भ किया गया है। गंगा की प्रार्थना के साथ उपसंहार किया गया है। छप्पर पर बैठे भिखारी ने बाढ़ के दृश्य पर एक कवित्त बनाया है :—

तेरह सौ एकतालिस साल सावन चतुरदसी सुकुल दुकि गइल गंगा के पानी जुहानी में।
भीत गिरत धांय, बछरू भांय, बकरी कांय करत, मांय करत पाठी, प्रान परल अकथानी में।
बाप, माई, भाई, जोरू, भउजी पुकार करत, सकल समाज आज जात एक घानी में।
बाढ़ के बेयान छनछेप में सुनाय देत, छप्पर के उपर से भिखारी मुँहजथानी में।

१३४१ साल की बाढ़ का संक्षिप्त वर्णन है। 'हुकि गइल' का अर्थ प्रविष्ट कर गया। 'एक पानी' एक ही बार के अर्थ में है—तेल पेरने के लिये 'पानी' शब्द का प्रयोग किया जाता है। भीत (दिवाल) पानी से तर होकर गिरने लगती है, तो उसकी आवाज होती है - 'धाँय'। बछरू (बछड़े) की आवाज होती है—'भाँय'। उधर बकरी करती है—'काँय' और उसका छोटा बच्चा (पाठो) बोलता है—'माँय'। आदमी कैसे बोलता है, यह भिखारी के शब्दों में सुनिये :—

हमरा के चढ़ालऽ हो भइया।
छान्ह पर नाहँवार करे बाप भइया। बाकस में बह गइल गहना रुपइया।
बाछा के पाछा से दहि गइल गइया। एह घरी एको ना लउकत उपइया।
तन बिना अन के आ होखत दोहइया। कहाँ के हऽ पाल तानल जात बाटे भइया।
कहत भिखारी आइल बुध के समइया। एह जून बचालऽ होके बृज के कन्हइया।

डूबते का तिनका सहारा। नौका के छाजन पर मल्लाह बैठा है और उसे पुकारनेवाले हैं—लाखों बाढ़-पीड़ित मनुष्य। ऐ भाई 'हमरा के चढ़ालऽ'। कोई कहता है ब्रज बचानेवाले कृष्ण बनकर आज हमें 'एह जून बचालऽ'। नौका यदि किनारे आ जाती है, तो उसपर चढ़ने के लिए लोग टूट पड़ते हैं, जिससे 'नाँहवार' घबराकर नाव डूबने के भय से चिल्ला उठता है - 'बाप भइया'। लोगों के दुःखों का ठिकाना नहीं; 'गहना रुपइया' बक्से में ही बह गया। 'बाछा के पाछा से' गौवें दह गईं। 'तन बिना अन के' भूख से तड़पते मनुष्य दुहाई दे रहे हैं। प्रत्येक घर की हालत एक-सी बनी हुई है। यथा—

घर-घर में भरल सुरसरिजी के धारी। अब तब प्राण सुरपुर गमु धारी।
डूबि गइल सील लोढ़ा, लोटा घइला, थारी। भीत गिरल बह चलल चउकठ केंवारी।
अन बिना तन भइल भूख के बेमारी। छपर पर पेट धके रोवे नर नारी।
बाछा के गोदी में लेके महतारी। कहे चलि जात बानी राम के बेगारी।
सावन पुरनमासी के कहत भिखारी। कुतुपुर के भइल जरी सोरी से उखारी।

प्रत्येक घर की यही स्थिति है कि उसमें 'बारि बरोबर बारि' है। जितने वजनदार पदार्थ थे, डूब गये। जितनी हल्की चीजें थीं, उतराकर बह गईं। अन्न के न मिलने से लोगों में 'भूख' की बीमारी हो गई है और वे सभी अपना-अपना पेट पकड़कर रो रहे हैं। नवजात शिशु को गोद में चिपकाये माता 'राम' की बेगार में जा रही है। भिखारी का अपना गाँव कुतुपुर तो 'जरी सोरी से' ही उस दहार में उजड़ गया। इस प्रकार, छपरे के अन्य गाँव भी नष्ट हो गये। लोगों को त्राण कहाँ-कहाँ मिला, भिखारी के शब्दों में सुनिये—

घर गिरल तोहरो लहरिया में गंगाजी!
लोग बा भरल गुलटेनगंज जाइकर, राय साहेबजी के अटरिया में गंगाजी।

केहु खलपुरा, महाराजगंज केहु बाटे, केहु बा लुकुसपुर नगरिया में गंगाजी।
केहु दरिआवगंज, केहु बा चिरानगढ़, केहु बाटे डोरिगंज बजरिया में गंगाजी।
सेरपुर, घेघटा केहु बा मखदुमगंज, चहला उड़ल फुलवरिया में गंगाजी।
घाट टोला, रउआ रहत केहु तेलपा में, रउआ चहतवा धधरिया में गंगाजी।
सोझे पार होइ-होइ जहां-तहां सब कोई, गली-गली छपरा सहरिया में गंगाजी।
कुतुपुर के सुनीं लीला केहु जाके आरे जिला, बबुरा रहल चौबरिया में गंगाजी।
बहुत बेहाल एकतालीस के साल माहीं, छवि गइल लगी लहरिया में गंगाजी।
दुनो साम आठो जाम अरज करत बानीं, रखिहऽ भिखारी के नजरिया में गंगाजी।

इतनी हानि उठाने पर भी भिखारी गंगा के प्रति अपनी भक्ति-भावना को यों व्यक्त करते हैं—'रखिहऽ भिखारी के नजरिया में'। भिखारी गंगा-तट का सुख और दुःख दोनों जानते थे। दुःख तो है मामूली। उसके बाद सब कुछ सुख-ही-सुख है। गंगा अपने समीप रहनेवालों को क्या नहीं देती—अन्न, धन और आरोग्य इत्यादि सारी विभूतियाँ गंगा प्रदान करती हैं। जो व्यक्ति उनका सेवन कर लेता है, वह अन्यत्र रह नहीं सकता, टिक नहीं सकता। बाढ़ के पश्चात् का गंगा-स्नान का एक चित्र लीजिये, जिसमें एक परिवार अपना हौसला इस प्रकार व्यक्त करता है—

हमनी के जात बानी गंगा नहाय।
सभ केहु करत बाटे घर-घर से जतरा, गनपति गौरी मनाय।
साजि के सिंगार सब टोला परोसिन, तीनों पतोह बेटा माय।
नया नया सारी चोली माथा प मोटरी, अवना में बान्हल बा खाय।
कहत भिखारी त्रिपुरारी के नाम लेके, लागल गीत गवाय।

दहार की आपत्ति से गुजरने के बाद गंगा के प्रति कौन-सी भावना है, वह निम्न गीत में इस प्रकार व्यक्त है—

गंगाजी के भरल अररिया नगरिया बहात बाटे हो!
गंगा मइया पनिया में जनिया धोवत बाड़ी कंत विदेस मोर हो!
घरवा में धारवा बहत बा पुकारवा होखत बाटे हो!
गंगा मइया तनवा में अनवा मिलत नइखे नैना से गिरे लोर हो!
तेरह सौ एकतालीस साल सावन सूनी घर में ना रहल खुदी हो!
गंगा मइया सूकवा के खुकवा लगाइ कर भइलू काहे निपटे कठोर हो!
कहत भिखारी नाई गीत गाके रचि-रचि चित लाके हो!
गंगा मइया जनम-जनम दीहऽ दरस तरस बाटे साँझ भोर हो!

उमरिया भरिया ना !

सुन्दर सुभूमि भइया भारत के देसवा से मोरे मन बसे हिम खोह रे बटोहिया !

समस्त भोजपुरी प्रदेश तथा वर्त्तमान और आगामी भोजपुरी साहित्य-साधक पूज्यपाद रघुवीर नारायण जी के कृतज्ञ रहेंगे, जिन्होंने भोजपुरी का महत्व बताने के लिये पहले-पहल बटोहिया धुन में रचना की। 'सुन्दरी-विलाप' (जो सन् १९१९ ई० के आस-पास छपी) की रचयिता भी धन्यवाद का पात्र है, जिसकी रचना में भोजपुरी की एक प्रोषितपतिका की वेदना देखने को मिली। 'सुन्दरी-विलाप' के पश्चात् उससे मिलती-जुलती एक पुस्तक 'प्यारी सुन्दरी वियोग' भी आई। पीछे श्रीनाथ शरण के नाम से क्रमशः सोलह और बीस भागों में 'बिदेसिया-नाटक' दूधनाथ प्रेस, सलकिया, हवड़ा से प्रकाशित हुआ, जिसमें अधिकांशतः गीतों में भिखारी के नाम दर्ज थे। 'बिदेसिया नाटक' भिखारी का नहीं निकल सका। फिर भी पत्नी के मधुर-प्रेम की वेदना भिखारी को लिखनी ही थी। कुछ दिनों के अनन्तर उनकी प्रोषित-पतिका की तस्वीर 'कलियुग-बहार' में प्रस्फुटित हुई, जिसका पूर्णतः निखार 'बहरा बहार' में हुआ और उसका पर्यवसान अन्यान्य पुस्तिकाओं में। इतने पर भी 'बिदेसिया' की उनकी वेदना आजीवन बनी रही और कुछ-न-कुछ उसपर वे बराबर लिखते रहे और अपने अमिट दर्द को निकालते रहे। मधुर-प्रेम के दर्द की कहानी भिखारी के जीवन में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक बनी रही। भिखारी की वह ग्रामीण बिदेशिया की प्रवत्सत्पतिका प्रथम विलक्ष शब्दों में अर्ज करती है—

(१) हाय ! नाथ तोहे सौंपि दीन्ह, मोर भाइ बाप महतारी।
सत के बन्धन तोरि के स्वामी ! मति करहुँ बरियारी ॥ (कलियुग बहार)

(२) मति जा हो पुरुबवा, पिया मोर।
पुरुब देस में टोना बेली बा, पानी बहुत कमजोर।

प्रसंग बिदेश, परदेस (कलकत्ता) जाने का है, जो किसी भी सहृदय व्यक्ति के लिये हृदय-द्रावक है। गवने की आई नवयुवती वधू और उसके मुग्ध पति में पहले एक बहस होती है। पति वादा करता है—'बरिस दिन पर आइबि' और 'आके फगुआ खेलबि अबीर से'। मगर पत्नी अपनी असमर्थता जाहिर करती है'कहे भिखारी कइसे चलिहें, बिन इंजन के रेल'। पति उसको अभ्यर्थना 'पानी बहुत कमजोर', सत के

बन्धन इत्यादि पर तनिक ध्यान न देकर प्रस्थान कर जाता है और वह अल्हड़-बिल्कुल पत्नी तड़पती रह जाती है, कुहँकती रह जाती है :—

(१) चहूँ दिसि चितवत बीतत ना रात दिन, कतहूँ ना लउकत अँजोर ।
कहत भिखारी अब जिअल कठिन बा, नयना से डरकत लोर ।(कलियुग बहार)

(२) करि के गवनवाँ भवनवाँ में छोड़ि कर, अपने परइलन पुरुखवा बलमुआँ !
अँखिया से दिन भर गिरे लोर ढरढर, बटिया जोहत दिन बीते ना बलमुआँ !
गुलमा के नतिया आवेला जब रतिया, त तिल भर कल नाहीं परेला बलमुआँ !
तोहरे करनवाँ परनवाँ दुखित बाटे, बया कइके बरसन दे दऽ हो बलमुआँ !
काढ़ कइलीं चुकवा कि छोड़लऽ मुलुकवा कहलऽ ना दिलवा के हलिया बलमुआँ !
सामली मुरतिया सालत बाटे छतिया में, एको नाहीं पंतिया भेजवलऽ बलमुआँ !
कवना नगरिया डगरिया में पिया मोर, करत होइबऽ तुहूँ बास हो बलमुआँ !
घर में अकेले बानी ईश्वरजी राखऽ पानी, चढ़ल जवानी माटी मिलता बलमुआँ !
बिरह के कूपवा में, जोगिनी के रूपवा में, तोहरे पर अलख जगइबो बलमुआँ !

× × ×

ताकतानी चारू ओर पिया आके करऽ सोर, लवटो अभागिनी के भगिया बलमुआँ !
मोरा लेखा दुखिया के मुखिया ना जग केहू, भुखिया बा तोहरे दरस के बलमुआँ !
तेगा लिहितऽ हाथवा के,काटि दिहितऽ माथवा के,होइ जइतीं पार भवकूप से बलमुआँ!
कहत भिखारी नाई, आस नइखे एको पाई, हमरा से होखे के बोदार हो बलमुआँ !

भयानक रात्रि हो, एकान्त हो और प्रोषित-पतिका घर में अकेली हो। समझिये कि विरह उद्दीप्त करनेवाली सारी सामग्री एकत्र हो गई। ये सब दर्द के 'उद्दीपन' हैं। क्या आपने कभी निस्तब्ध रात्रि में उसके मधुर झंकार को सुना है ? उस समय आपको अपनी प्रिय वस्तु की याद नहीं आई है ? क्या ऐसा नहीं प्रतीत हुआ है कि समस्त चराचर अपनी गूढ़-वेदना मूक भाषा में सुना रहा है और उसका प्रत्युत्तर भी रात्रि अपने कोमल मीठे स्वर में दे रही है ? प्रेमियों के निकट रात बोलती है। रात में विरहिणी की नींद हराम हो जाती है और खीज भरी वाणी में दर्द का बयान 'गुलमा के नतिया' से करती है। मिट्टी पलीद होती हुई 'चढ़ल जवानी' की रक्षा के लिए ईश्वर से कहती है। विरहिणी की यही स्थिति होती है—आँसू बहाना, बाट जोहना और अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प करना। कभी दर्शन की आकांक्षा, तो कभी रूप की स्मृति। कभी भूलों की याद, तो कभी पति की चाहना, तो कभी साथ रहने की साध। वेदना की गहराई में जाकर विरहिणी जीवन से छुट्टी भी चाहती है, मगर प्रियतम के कर-कमलों से 'तेगा लिहितऽ हाथवा के काटि दिहितऽ माथवा के'। तात्पर्य यह कि 'पहले दरस दिखाय के पीछे

लीजो खाय', और दर्शन न होने तक 'फिर फिर भूँजै तरै न बारै' की तरह 'अलख' जगाना। गजब की है आशा 'पिया आके करऽ सोर'। जैसे कि 'मुरलि रव की आज लौ लौ लगी है'। इधर 'आस लइले एको पाई' देखकर तो कहना पड़ता है कि विरह में आशा और निराश्य दोनों का सामञ्जस्य है। बिखारी की विरहिणी पुनः कहती है—

रहि रहि उठत बाटे मनवाँ में शूल।
सामली सूरत पिया, गइल जाड़न हमरा हिया, मुहँवा कमलवा के फूल।
मालिक मोर गइलन भागल, पिछवा से लहरी लागल, अरिये के बाटे हमार भूल।
देखऽ दुख दीनानाथ, दुनों जोड़ी एके साथ, कहिया ले मिलइबऽ समतूल!

'कहिया ले मिलइबऽ समतूल?' का सन्तुलन किसका जी ठंडा नहीं कर देता? प्रेम की प्रारम्भिक भूल ही अन्त में शूल बन जाती है, जो रह-रहकर हृदय को विदीर्ण कर देती है। 'सूरत' तो 'हिया' में गड़ती है जैसे 'सामली सुरतिया सावत बाटे छतिया' पर अधिकाधिक दुखदाई होती है—प्रियतम की ओर से की हुई कड़ी कारेंदाई। दिन-पर-दिन बीतते जाते हैं और रात-पर-रात, मगर 'लिखियो ना भेजनारे खाम' और 'एको नाहीं पतिया भेजवलन बलमुआ'। वियोग की घड़ियों में पत्र की कीमत मापनी नहीं होती। प्रेमियों के लिए पत्र अर्द्ध मिलन का काम करता है। अतः जो प्रियतम चिट्ठी तक नहीं भेजता, वह कितना निष्ठुर और निर्मम है, कहना कठिन है। उस बेईमान पति को पत्नी उलाहना देती है—

हमरा के साँसति कइके, परदेसे गइलन बेइमान।
सामली सूरत मोरा मन से ना बिसरत, लागल सुरतिया के बान।

भोजपुरी में 'साँसति' का अर्थ होता है—दुर्दशा, सजा। स्मरणीय है कि यह एक हिन्दू गृहिणी की वाणी है, जिसे पति के सिवा दूसरा कोई प्रेम देवता नहीं। हिन्दू समाज में अबला नारी के ऊपर पुरुषों द्वारा बराबर जुल्म होता रहा है। उसे नारी बराबर अंगेजनी(झेलनी)रही है। 'सुरतिया के बान' से मतलब कबीर के 'सूरत निरत से नहीं'। यह मन, प्राण, शरीर—सब पर प्रहार करनेवाली चीज है। इसका लगना गजब का है। आँख का लगा आँसू निकालकर विश्राम करता है। दिल का लगा 'जिगर के टुकड़े' सामने रख देता है। मगर अर्द्धांगिनी की वेदना को किन शब्दों में आँका जाय—

घरवा के तनिको ना उदेस कइलन, जब से बिदेसे गइलन साजन मोर।
दया तनिक उनका नाहीं लागत, भगलनि बहियाँ झकझोर।
सइयाँ के सुख हम कुछुओ न जनलीं, देखलीं ना करिया कि गोर।
जब-जब याद होत मन माहीं, मदन करत अति जोर।

निष्ठुर प्रियतम अपनी निष्ठुरता में तनिक भी रियायत नहीं रखता। श्रद्धा कहती है—'प्रिय की निष्ठुर विजय हुई, पर यह तो मेरी हार नहीं' और गुप्तजी समन्वय करते हैं—'प्रेमियों का गीत गीतातीत है, हार में जिसमें परस्पर जीत है।' प्रेम के उसी झकझोर में पड़कर सूर ने ललकारा था—'हिरदय ते **अब जावोगे**' भिखारी का निष्ठुर प्रियतम जबसे गया 'धरवा के कुछुओ ना उदेस कइले'। 'ना देखनी करिया कि गोर' मुहावरा उसी प्रकार का है, जिस प्रकार का 'तीत मीठ जानना'। पत्नी ने जिस पति का कोई सुख नहीं जाना, उसके प्रति कहाँ तक वह कृतज्ञ रह सकती है। मगर हिन्दू-शास्त्र कहता है कि जहाँ नारी अपने पति का तनिक-सा अपमान करती है कि उसके लिये दरवाजा खुल जाता है 'नारी पाव यमपुर दुख नाना' भिखारी की प्रोषित-पतिका तरह-तरह के विरह के उद्‌गार व्यक्त करती है—

सइयाँ के गुन रूप मनवा में गुनि-गुनि बइठल बितेला सारी रातो।
बुअदाई जारत बाटे छातो, आइके पहुँचल रितु बरसाती।

विरह वर्णन के अन्दर कवियों ने 'बारहमासा' और 'षट्‌ऋतु' को स्थान दिया है। भिखारी के भी एक ही पद में बारहमासा की चर्चा है। लेकिन वेदना की सचबाई बरसात में है, उससे विरहिणी की एकरूपता स्थापित होती है। 'रितु बरसाती' ही विरहिणी के लिए 'दुखदाई' है। उधर बरसात में एक तरफ पानी बरसत है, दूसरी तरफ 'नैना से ढरकत बा लोर'। यह अजस्र प्रवाह अविरल गति से प्रवाहित हो रहा है 'जइसे ढरे सावन के महिनवाँ'। विरहियों के इस करुण रस में सारी सृष्टि सराबोर दीखती है। गोपियों के विरह से 'पावस रितु' मात दीखती है। लीजिए बारहमासे की एक रश्म-अदायगी, जिसमें पत्नी एक बटोही से अपना सन्देश देती है—

आवेला असाढ़ मास, लागेला अधिक आस; बरखा में पिया घर अइतन बटोहिया।
पिया अइतन बुनिया में,रहि लिहतन बुनिया में;अखड़ेला अधिका सावनवाँ बटोहिया।
जब आई मास भादो, खेली सब वहि कादो; कृसन के जनम होती असहीं बटोहिया
कड़ा घाम दिनवाँ के, आसिन महिनवाँ के; लुकुवा समानवाँ बुसाला हो बटोहिया।
कातिक मासवा में, पियऊ के फाँसवा में; हाड़ में से रसवा चुअत बा बटोहिया।
अगहन पुस मासे, दुख कहीं केकरा से; बनवाँ सरिसवा भवनवा बटोहिया।
मास आई बाघवा, कँपावे लागी माघवा त; हाड़वा में जाड़वा समाई हो बटोहिया।
पलंग बा सुनवा, का कहलों अएगुनवा ? से भारी त महीना हs फगुनवा बटोहिया।
कोइलि के मीठ बोली, कहतानी मुँह खोली; चइत में लागेला भेयावन बटोहिया।
चढ़ी बइसाख जब, लगन पहुँची तब; जेठवा दबाई मोरा हेठवा बटोहिया!
मंगल करी कलोल, घर-घर बाजी ढोल; कहत भिखारी सोऊs पिया के बटोहिया।

मीरा का बारहमासा भी इसी प्रकार का मिलता है। भिखारी के बारहमासे में प्रकृति-चित्रण कम, मगर हृदय-चित्रण अधिक है। आषाढ़ में आशा है, सावन में अनुपस्थिति का खलना भादो में 'दही कादो' न खेलने का अफसोस, आश्विन में वेदना की जलन, कार्तिक में हड्डी से भी रस चू जाता है। अगहन में भवन ही बन हो जाता है। माघ का जाड़ा हड्डी में घुस जाता है और फागुन के रंग में भंग हो जाता है। चैत में कोयल वेदना को प्रदीप्त करती है और वैशाख में लग्नकाल का अत्याचार। इस अत्याचार का रूप जेठ में बढ़कर सारी सेखी भुला देता है और विरहिणी दब कर चुस्त हो जाती है, 'जेठवा दबाई मोरा हेठवा'।

विरह-साहित्य में सदा से संदेश-प्रेषण अनिवार्य रहा है। महाकवि कालिदास के 'मेघदूत' में संदेस भेजने में प्रेमावेश के कारण चेतनाचेतन का भी ध्यान नहीं रहा है। 'पद्मावत' में जहाँ एक ओर 'पिव के विरह सँदेसडा हे भँवरा हे काग' कहते हैं, वहीं दूसरी ओर एक चतुर सुग्गा भी। 'पद्मावत' का हीरामन 'कादम्बरी' के वैशम्पायन से टक्कर ले रहा है। 'पद्मावत' की सारी प्रेम-पद्धति उसी श्रेष्ठ 'सुए' से परिचालित है, जिस प्रकार दमयन्ती के श्रेष्ठ हंस से नल का प्रेम। कहते हैं आजकल लड़ाई की खबरों को ले जाने में कबूतर भी कुछ कम मदद नहीं करते। तात्पर्य यह कि मानव का दहुत-सा व्यापार इन पशु-पक्षियों से भी सम्पन्न हुआ है। लौकिक-लाभ के साथ ही पारलौकिक फायदा भी 'सुआ बड़ावत गनिका तर गई'। लेकिन जहाँ तक सन्देश का प्रश्न है, हम यही कह सकते हैं कि इस दिशा में पशु-पक्षियों के बजाय मानवीय सहारा लेना ठीक है। यह एकमात्र हनुमान (वानर नहीं थे) का कार्य था कि 'भरि आये जल राजिव नैना'। परिणाम यह निकला कि 'मास दिवस' के भीतर ही जनक-नन्दिनी राम को मिल गईं। उधर गोपियों ने सन्देसों की झड़ी लगा दी—'सन्देसन मधुबन कूप भरे'। अतः गोपियाँ कोई सन्देशा न दे दें—इस भय से 'पथिक न वा मग जात'। कृष्ण के सन्देशवाहक तो उद्धव थे ही। भिखारी ने अपनी विरहिणी के लिए एक बटोही को तैयार किया है। उस बटोही के सामने विरहिणी अपना हृदय खोलकर रख देती है—

करिया ना शोर घाटे, लामा नाहीं हवे नाटे; मझिला जवान स्याम सुन्दर बटोहिया।
घुठिया ले धोती कोर, नकिया सुगा के ठोर; सिर पर टोवी छाती चाकर बटोहिया।
पिया के सकल के तू मन में नकल लिखऽ, हुलिया के पुलिया बनाइलऽ बटोहिया!

मीरा अपने प्रियतम का परिचय देती है 'जाके सिर मोर मुकुट मोरे पति सोई'। भिखारी की विरहिणी अपने प्रियतम की 'हुलिया के पुलिया' तैयार कर देती है। इस बटोही के निवेदन करने का परिणाम अन्त में अच्छा ही निकलता है। पूर्व देश में जाकर वह पथिक वियोगिनी के प्रवासी-पति की खोज ठीक उसी प्रकार करता है,

जिस प्रकार वर्मा में शरत् का श्रीकांत अभया के पति का। 'कहाँ प्रवासी है मेरा', की तरह फेरा लगाते-लगाते बटोही से प्रवासी की मुलाकात होती है। वह प्रवासी घर लौट जाता है। अपनी पत्नी से उसका मंगल-मिलन होता है। मिलन तो होता ही है—

जीवन है तो कभी मिलन है कट जाती दुख की रातें।

मगर भिखारी द्वारा प्रतिपादित जो विदेशिया साजन है, वह है परमपिता परमात्मा। उससे मिलने के लिए सभी जीव तड़प रहे हैं, छटपटा रहे हैं। पत्नी के दर्द की कहानी में भिखारी ने आध्यात्मिक वेदना को उड़ेल दिया है। कहानी के अन्त में उन्होंने 'अन्योक्ति' की है, जैसे जायसी ने 'पद्मावत' की 'प्रेम कथा एहि भाँति बिचारहु'। भिखारी अपनी वेदना को इस प्रकार समझाते हैं—

पिया गइले कलकतवा ए सजनी :
तूरि दीहलन पति पतनी के नातावा ए सजनी !

आप कहेंगे यह कौन-सा कलकत्ता है ? उत्तर में निवेदन है कि यह वही कलकत्ता है, जहाँ जाने के लिए सबकी कलक है। जीव जिसके लिए कलकता है कहकर—'मरली हो परदेसी के सोचे' और—

पिया निपटे नदानवा ए सजनी !
हमरा घोंटात नइखे कनवा भर अनवा ए सजनी !

'घोंटात' भोजपुरी का एक विशेष शब्द है, जिसका अर्थ होगा—कंठ के नीचे भोजन उतारना। 'कनवा' का अर्थ छटाँक नहीं; अपितु, कण मात्र होगा। विरह की गम्भीर स्थिति में भोजन दुर्लभ हो जाता है। जब उस परदेशी से प्रेम हो जाता है, अजीब हालत हो जाती है। संसार का कोई आकर्षण न उसे सुहाता है, न उसे लुभाता ही है। भिखारी की अपनी वेदना तो और भी गम्भीर है—

लागि गइल बा बिदेसी से नजरिया।
आठो पहर उठत बा करेज में लहरिया।

उस परदेशी साजन की नजर लगते ही दशा विचित्र हो जाती है। कलेजे में उस विरह की 'लहर' आठो पहर उठती है। ऐसी लहर क्या बुझाई जा सकती है ? कदापि नहीं 'रहिमन दाहे प्रेम के बुझि बुझि के सुलगाहि'। यहाँ एक और बात नितान्त अवधार्य है 'करेज' की उठी 'लहर' की आवाज सुनने के लिए कठिन कलेजा करना पड़ता है—

कलेजा थामकर जब दिल जले फरियाद करते हैं।
तो सुननेवालों के दिल से सुरख शोले निकलते हैं॥

दीवानों की बात सुनने-समझने में परिश्रम करना पड़ता है। सहज ही प्रेम की बात हृदयगम नहीं हो सकती। प्रेमियों को प्रियतम जब तक मिलता नहीं, तबतक उसे अपना दर्द कहना ही है चाहे जिससे कहे, जहाँ सुनावे। और, मिलन ? वह यदि हो भी जाय, तो होश-हवास गायब—'कोई शिकायत रही न बाकी'। विरह की दारुण स्थिति से तनिक भी कम खतरनाक स्थिति मिलन की हो ऐसी बात नहीं। 'जुगुनू' की पंक्तियाँ हैं—

कैसे कह दूँ मुलाकात नहीं होती है।
मुलाकात होती है मगर बात नहीं होती है॥

हाँ तो भिखारी की भावना मधुरातिमधुर है। 'लोरिकायन' की एक पंक्ति में उन्होंने खुलकर कहा है—'कवना दो देसवा में बाड़न केहु नइसे आवत हो जात'। उसी अगम देश का परिचय सरह ने दिया है 'जहँ मन पवन न संचरै सरहे कहिय उवेस'। उसी देश के विदेशी से भिखारी के प्रेम की डोरी लगी हुई है—

लागि गइल बा सुरतिया में डोरी।
तोहरा से कहत बानी कहिहऽ मति गोरी।

यहाँ जो 'सुरतिया में डोरी' जो लगी है, उसके समक्ष कबीर का 'सूरतनिरत' सूखा-सा प्रतीत होता है। द्वैत में अद्वैत को पाना, रस से भरा हुआ प्रेम है। यह सरस प्रेम की डोरी जब लगती है, तो उसमें बँधकर एक-न-एक दिन प्रियतम चला ही आता है। भिखारी की 'सुरतिया' विचित्र है और परम गोपनीय है। प्रेम की आवाज बन्द रखना—'कहिहऽ मति' विचारने ही लायक है। प्रेम की बातें कितनी गुप्त होती हैं, एकमात्र प्रेमी ही जानता है। प्रेम की बात किसी से कही नहीं जा सकती और किसी से कहना भी नहीं चाहिए। कहने में शायद वह धूमिल हो जाती है। लेकिन कातिल से अथवा अपनी प्रिय सखी से तो प्रेम की वेदना कहनी ही पड़ेगी, कहनी ही चाहिए। भिखारी उसी गोरी से—अपनी विश्वासी सखी से—अपने दर्द की हालत जताते हैं—

लागि गइल बा विदेशी में सुरतिया।
घर में रोवत बीआ बिआही औरतिया।

संत लोग मौत को अपनी शादी मानते हैं। कबीर आदि ने परमात्म-मिलन को गवने का रूपक दिया है। मगर भिखारी की शादी हो गई है। गवना हो गया है। गवना कराकर प्रियतम जुदा हो गया है। अब उससे मिलने का प्रयास गुरु रूपी बटोही कर रहा है। उस मिलन, महामिलन, मंगल-मिलन की बाट भिखारी

जोह रहे हैं। पल-पल में क्षण-क्षण में, आठो पहर उनकी प्रतीक्षा चल रह रही है। रास्ता देख रहे है। अतः उनकी प्रतीक्षा, दर्दनाक स्थिति तथा दर्शन की लालसा धन्य है—

(१) बाबा के भवनवा से करिके गवनवा रे साजनवा, पिया कइले पुरुब के पयनवा।
पानी ना आइल कुछ लिखि के बेयनवा रे साजनवा, ना जानों जे करने करनवा।
अब कब होई पतिपद दरसनवा रे साजनवा, हर छन तरसत बा मनवा।

(२) बीतत बाटे आठ पहरिया हो, डगरिया जोहत ना।

× × ×

केई हमरा जरिया में भिरवले बाटे अरिया हो, चकरिया दरिके ना।
दुख में होत बा जतसरिया हो चकरिया दरिके ना।

× × ×

कहत भिखारी मनवा करेला हर घरिया हो उमरिया भरिया ना।
रहितें त देखतीं भर नजरिया हो उमरिया भरिया ना।

हो मोर देवर दुलरु !

मधुरतम सम्बन्धों में देवर-भाभी का सम्बन्ध भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। समष्टि रूप से प्रायः सभी प्रकार के सम्बन्धों का सार खींच कर देवर-भाभी के संबंध में रख दिया गया है। भाभी के प्यार में वात्सल्य तथा दाम्पत्य-दोनों का अनोखा सम्मिश्रण है। परम्परानुसार ही उस प्यार में दाम्पत्य का विषय-विकार नहीं है और नहीं है-वात्सल्य की ममता। माता जन्म देती है,दूध पिलाती है और शेष मातृ-कार्यों को भाभी भी अधिक मनोयोग और उल्लास से कर लेती है। उसके अतिरिक्त गोपनीय बात जो माता से नहीं कही जा सकती, उसे भाभी के समक्ष प्रकाशित किया जा सकता है। हंसी-दिल्लगी और हमजोली बनने के लिये जितना यथेष्ठ देवर होता है, उतना पति भी नहीं हो सकता। माता का एकांगी प्रेम पुत्र में पूज्य बुद्धि उत्पन्न करता है, जिससे पुत्र निरावरण होकर माता से मिल नहीं पाता। गांधारी के लाख समझाने पर भी दुर्योधन नंगा होकर माता के पास नहीं जा सका था। भाभी के अनमोल प्यार में पावन रस भरा हुआ है, जिससे छुटकारा पाना मुश्किल है। यह एकमात्र 'सुनीता' भाभी का प्यार था, जिसमें 'हरिश्चन्द्र' जैसा चिन्तनशील व्यक्ति भी उलझ गया था और सत्या को तो वह भूली नजरों नहीं देखता था। वह मात्र 'सुनीता' भाभी से आकृष्ट था। 'सुनीता' भाभी के सहारे ही उसने जीवन में सिद्धि लाभ की।

सीता भाभी के सान्निध्य तथा प्यार की छाया में लक्ष्मण के योग की पुष्टि हुई। 'तात ! तुम्हारि मातु बैदेही'—यह लक्ष्मण की माता सुमित्रा का कथन था। लक्ष्मण का सौभाग्य था कि वे सीता-भाभी के समीप अधिकाधिक रहे; मगर, सीता-भाभी का प्यार भरत और शत्रुघ्न के लिए भी कम नहीं था। अधिकाधिक साहचर्य के कारण एक दिन लक्ष्मण के जीवन में ऐसा भी आया कि 'मरम वचन' का शिकार होना पड़ा। भरत और शत्रुघ्न के सामने भाभी की कटुता नहीं आई। भाभी-विहीन राम ने त्याग दिखाया था और भाभी-संयुक्त भरत ने साधुता प्रदर्शित की। दो भाभियों से युक्त लक्ष्मण ने योग की साधना और तीन भाभियों के स्नेह-पात्र शत्रुघ्न ने वैभव और ऐश्वर्य का भोग किया। साधु भरत को तो जैसे सीता-भाभी पर नाज था। चित्रकूट की भरी सभा में साधु भरत डंके की चोट घोषणा करते हैं—

भाभी, तुम पर है मुझे भरोसा दूना। तुम पूर्ण करो निज भरत मातृ पद ऊना॥

भिखारी ने पति-पत्नी के प्रेम-विरह का उल्लेख कर देवर-भाभी के प्रेम-विरह की चर्चा की है। इस कृति का नाम है—'भाई-विरोध नाटक'। किसी ग्रामीण परिवार में उपकारी, उपदर और उजागर नाम के तीन सहोदर भाई एक साथ जीवन-यापन करते हैं। सबसे छोटे भाई उजागर के 'पन बा चोरा' और 'उपकारी बाड़न लरकोरा'। इस परिवार में एक दिन एक कुटनी औरत आती है और उल्टा-सीधा समझा बुझाकर कलह का बीजारोपण कर जाती है। उपदर की पत्नी हिस्सा बँटवाने की राय पक्की करती है। उपकारी तो उपकारी है ही। उसे छल-कपट छू तक नहीं सके हैं। इधर उपदर महान् उपद्रवी है। वह दो हिस्से लेने के लोभ में सबसे छोटे भाई उजागर को अपने में मिला लेता है। सारी जायदाद के तीन हिस्से कर दिये जाते हैं। उपकारी अपना एक हिस्सा पाता है और उपदर दो हिस्से।

वह कुटनी औरत पुनः उपदर के घर आती है। उपदर की पत्नी को पुनः बहकाती है कि वह छोटे देवर का वध करके आराम और चैन से बसर करे। बस, ज्यों ही उपदर घर आता है कि उसकी पत्नी इस घृणित प्रस्ताव को उसके सामने रख देती है। उपदर उसकी राय मान लेता है और उजागर का वध कर डालता है। आज के समाज में न फूट डालनेवालों की कमी है, न कृतघ्न और स्वार्थी भाइयों की। गाते हैं लोग 'मिले न जगत सहोदर भ्राता' और काम करते हैं नीच से नीच।* ऐसे समाज की कुरीतियों और दोषों की आलोचना भिखारी ने अपनी रचनाओं में की है। उनके सभी नाटक समाज के सुधार के लिए लिखे गये हैं। समाज में जितने नग्न नृत्य हो रहे हैं, उन्हें भिखारी अच्छी तरह जानते थे और उनकी कड़ी आलोचना करते थे, प्रत्युत् पर्दा-फाश कर मंच पर दिखाते थे।

इसके पश्चात् प्रारम्भ होता है—भाभी विलाप। सबसे बड़ी भाभी का विलाप—उपकारी की पत्नी का विलाप। एक भाभी ऐसी है, जो जान से मरवा डालती है। दूसरी ऐसी भाभी है, जो जान देने के लिये तैयार हो जाती है। भाभी की कीमत आँकने के ही लिये भाई विरोध नाटक' की अवतारणा हुई है। ग्रंथ-प्रशस्ति से हटते ही भिखारी ने देवर-भाभी के अनोखे प्रेम की सूचना इस प्रकार दी है—

साफ से चुहानी आइबि रचि-रचि रोटिया पकाइबि,
देवरू से सामीजी के बोलवाइबि ए सजनी !

'चुहानी' भोजन बनाने के पवित्र स्थान का नाम है। 'भाई-विरोध नाटक' में नाटकीय ढंग के आवश्यक सभी उपादान मौजूद हैं। नाटक के बीच-बीच में थोड़ा कौतुक, थोड़ा विनोद तथा हास-परिहास भी सम्मिलित है। कहीं-कहीं सारगर्भित

---

* भिखारी का राष्ट्र-प्रेम भी बहुत था—'लगड़ा लगावल पाप बराबर समुझऽ भारत के भाई !' —लेखक

बातें तथा जटिल समस्यायें भी आती हैं। कुटनी औरत के बहकाने से उपदर की पत्नी जो विलाप सुनाती है, उसे सुनकर हृदय सहम जाता है—

जहिया से अइलीं पिया तोहरा महलिया में, सब दिन रहलीं टहलिया में पियवा।
घरमें के सब काम करत सुबह शाम, रूपया के मुँहवा ना देखलीं हो पियवा।

इस दुनिया में अच्छे-बुरे की समानान्तर लकीरें दौड़ रही हैं। उपकारी अपनी उपकार-वृत्ति को नहीं छोड़ता। वह स्वयं जेल की यातना सहकर उपदर की जान बचाता है। परिवार एक ही है। उसमें उपकारी भी है और उपदर भी है। दोनों की पत्नियाँ भी उन्हीं के अनुकूल हैं। उपकारी की पत्नी उपकारी से भी बढ़कर है। सच कहा जाय तो भिखारी का 'भाई विरोध नाटक' उपकारी की पत्नी के ऊपर ही अवलम्बित है। अपने छोटे देवर उजागर के लिए वह किन मार्मिक शब्दों में विलाप कर रही है, तनिक रसास्वादन कीजिये—

पद में गौरी के लाल, गिरत बा हमार भाल; दया कर दुनिया से उठलऽ देवरऊ।
हमरा के छोड़ि गइलऽ, काल के कलेवा भइलऽ; भउजी के प्रान के अधार हो देवरऊ।
चुपे-चुपे राहो भइलऽ, कुछुओ ना कहि गइलऽ; मुदई के मनसा पुरवलऽ देवरऊ।
छोटकी गोतिनिया, हऽ भारी अपसिनियाँ; ठगिनिया बुतवलसि बियवा देवरऊ।
जनितीं जे अइसन करी, बबुआ के लागी जरी;ओकरा में रहे हमना बेतीं हो देवरऊ।
केहु नाहीं जग अइसन, भाई होके कइलस अइसन; परलस जान खनदान के देवरऊ।
अजस कपारे चढ़ल, कुल में परेत बढ़ल; पढ़ल पंडित कहवां गइलऽ हो देवरऊ।
मनवा के नरम से, भउजी के सरम से; चढ़ि बढ़ि कबहूँ ना बोललऽ हो देवरऊ।
चम चम चम चाल, आँख नाक ओठ गाल; बिसरत नइले सुरतिया देवरऊ।
धोती कुरता टोपी साफ, केई बन्हिहें खाफकाफ;केई भउजी कहिके पुकरिहन देवरऊ।
कहत भिखारी दास, असरा भइल नाश; लास नाहीं मिलल बा तलास से देवरऊ।

भिखारी का 'भाई विरोध नाटक' भाइयों का विरोध प्रदर्शित करते हुए भी वस्तुतः एक हृदय-द्रावक प्रसंग है, जिसमें भाभी का विलाप चरमोत्कर्ष पर पहुँचा हुआ है। अतः इस नाटक को 'भाभी-विलाप' ही कहा जाय, तो नामकरण यथार्थ हो सकता है। भिखारी ऐसे कारुणिक और विशेष प्रसंगों का उद्घाटन मंगलाचरण से ही करते हैं। भाभी-विलाप में ऐसी अनेक कारुणिक अनुभूतियाँ हैं, जो बरबस हमें भाव-मग्न कर देती हैं। देवर उजागर के निधन के पश्चात् उसकी सच्ची भाभी (उपकारी की पत्नी) का ध्यान स्वभावतः उसके धुले पोशाकों की ओर जाता है और वह दहाड़ मारकर कराह उठती है। सोचती है, अब पुनः 'केई बन्हिहन लाफ काफ ?' फिर ध्यान आता है—उजागर का मीठा स्वर। सोचती है—'केई भउजी कहि के पुकरिहन ?' यद्यपि उसे भौजी कहनेवाला दूसरा देवर उपदर

विद्यमान था; तथापि, उसका अस्तित्व ठीक उसी प्रकार था, जिस प्रकार द्रौपदी के लिए दुर्योधन का। हजारीर सब प्रकार से योग्य था। जैसा उसका रूप-लावण्य था, उससे बढ़कर था—उसका शील-स्वभाव तथा गुण। स्वभाव से वह इतना मुलायम (नरम) था कि भाभी अपने करुण-क्रन्दन में बयान करती है 'चढ़ि अड़ि कबहूँ ना बोललऽ।' भाभी दिल की जलन को शान्त करने के लिए भूलना चाहती है; मगर, उसकी नजरों के सामने झट उपस्थित हो जाती है—देवर की एक झाँकी, एक झलक

चम चम चम चाल, ओल नाक ओठ गाल: बिसरत नहखे सरतिया बेवरऊ।

इस प्रकार रूप-गुण का बखान कर भाभी अपने देवर की विद्या की चर्चा करती है—'पढ़ल पंडित कहवाँ गइलऽ?' ऐसे विद्वान देवर की अकाल मृत्यु होने से तदनुसार प्रेत-योनि प्राप्त करने से, भाभी कराह उठती है कि 'कुल में परेत बाढ़ल' और उपदर को अयश भी मिल गया। भाभी को स्वप्न में भी ऐसी आशंका नहीं थी कि उपदर धन के लोभ में अपने सहोदर भाई का गला घोंट देगा। भाभी को यदि किंचित भी इसका आभास मिला होता, तो वह—'ओकरा में रहे हम ना देतीं'। इस अप्रत्याशित (बाधा) संकट के उपस्थित हो जाने से भाभी का हृदय टुकड़े-टुकड़े हो रहा है। उसका अन्तिम मन-प्रबोध यही होता है कि 'मुवई के मनसा पुरवलऽ।' भाभी को पहले से इतना तो ज्ञात ही था कि 'छोटकी गोतिनिया हऽ भारी झपचिनिया'। उसने अपने पति उपकारी से इस विषय को अलग होते समय कहा भी था, मगर, उपकारी ने उसकी बात अनसुनी कर दी। इसी कारण भाभी अपने पतिदेव उपकारी को कोसती है —

कइलऽ ना कहना हमार, होसियार सइयाँ।
अबुआ के छोड़ि देलऽ छोटकी गोतिनिया में; कइलसि बंस के उजार।
अपने तूं सुधा भइलऽ, ओकरे प्रतीति कइलऽ; भाई ना हउए हतेयार।
रोके हम करबि काई, सब लोगन जानि जाई; हंसिहन गाँव के गँवार।

'विलाप में विवेक का स्थान अत्यन्त मनोरम है 'जिसमें दीखे राइ रत्ती'। बिहारी द्वारा वर्णित वियोग कहीं-कहीं पर मजाक-सा हो गया है। सूर की गोपियों पर भी हँसी आती है। मर्यादा के अन्दर आता है, 'यशोधरा का विरह' तथा 'प्रिय-प्रवास' की राधा का विरह। विरह-वियोग का गाम्भीर्य उक्त दोनों स्थानों में पाया जाता है। रहा दुःखों का वर्गीकरण। तो विरह-वियोग जनित दुःख और मृत्यु-जनित दुःख दोनों में काफी अन्तर दीखता है। एक विप्रलम्भ है और दूसरा है—करुण। जुदाई के बाद मिलन सम्भव है। 'जीवन है, तो कभी मिलन है' और यदि जीवन समाप्त है, तो मिलन की कल्पना नहीं की जा सकती। कोई कच्चा दिल का

सच्चा प्रेमी हो और उसका प्रिय संसार से चल बसे, तो शायद वह उस दारुण चोट को बर्दाश्त नहीं कर सकता। श्रवण की मृत्यु के पश्चात् उसके माता-पिता संसार में रह नहीं सके। राम के विछोह को राजा दशरथ झेल नहीं सके। वियोग-विलाप उसी का सराहनीय है, जो मृत्यु अथवा वियोग के पश्चात् भी अपने को धैर्यपूर्वक कायम रखे और उस दारुण दुःख को झेल सके।

भाभी का अनमोल प्यार उसके दारुण दुःख में छिपा हुआ है। उस दारुण दुःख में छिपा हुआ है—उसका वास्तविक ज्ञान। परिवार के सभी सदस्यों के प्रति वह सही-सही अपनी धारणा व्यक्त करती है। प्रथम अपने ही पति उपकारी पर वह विचार करती है। कहती है कि उपकारी इतना 'मुग्धा' है कि वह उपदर जैसे भाई के विश्वास में आ जाता है—'जो उपदर भाई ना हउए हतेयार'। उसकी छोटी गोतिन मामूली 'सपासीन' नहीं है, जिसने 'कइलसि बंस के उजार' उजागर के वंश का तो समूल नाश ही हो गया। विडम्बना तो यह है कि चतुर भाभी अपने खानदान के इस कुकृत्य को किसी को जनाना भी नहीं चाहती। अधिक रोने-कलपने से लोगों के जानने की उसे आशंका है और दूसरे है गँवारों के हँसने की लज्जा भी। अतः उसकी बाहरी रुलाई बन्द हो जाती है और आन्तरिक रुलाई प्रारम्भ होती है, जिसमें एक प्रकार की रट-सी लगी हुई है—

देवरु देवरु रटते रटत देह भइल करिया हो।
बबड़ी में लाके तेल, रहलऽ सबसे कइके मेल; धोतिया के कोर पटधरिया हो।
साँवली सुरतिया बोली, लागल बा करेजा गोली; बिसरत नइखे सुरतिया हो।
कइसे के मेटाईं दाग, मुँह में ना पवलऽ आग; रहि रहि उठत बा लहरिया हो।
प्रान तेजि दीहितों आज, कहि कहि राज राज; रहितों जो अपनी मतरिया हो।
भाई होके मरलस जान, ऊपर कइलस आपन सान; बंस के डुबवलसि पगरिया हो।

प्रेमियों का नाम-रट भी सराहनीय होता है : 'जिभड़ियाँ छलया पड़ा राम पुकारि पुकारि।' और इधर भाभी का 'देवरु देवरु' रटना समस्त शरीर को काला बना देता है। यह मूक रुलाई का परिणाम है। जायसी कहते हैं :'तोला माँस रही नहीं देहा'। इतना ही क्यों? 'हाड़ भये सब किंगरी नसैं भईं सब तांति।' भाभी की मूक वेदना, गूढ़ वेदना में :'रहि रहि के उठत बा लहरिया हो'। शरीर का यह कालापन कुछ उसी प्रकार का है, जिस प्रकार का 'दिसियत कालिन्दी अति कारी' और 'मधुबन तुम कत रहत हरे।' देवर की साँवली सूरत भाभी पर काला रंग चढ़ा देती है। रूप के पुजारियों की हालत भी अजीब होती है। उसके चक्कर में पड़कर कोई कहता है 'नयन जोति सो बिछुरत नाहीं'। कोई कहता है 'भरि लोचन

विलोकि अवशेसा'। उजागर की मीठी-मीठी बोली भाभी के कोमल कलेजे में गोली की तरह प्रविष्ट कर गई है, जिससे उसका हृदय छलनी हो गया है। भाभी माँ का स्वरूप ही है। अतः भाभी मातृ-प्यार का भी अनुभव कर रही है। सोचती है कि आज यदि उजागर की माता विद्यमान होती, तो वह अपने उजागर के लिए—

प्रान तेजि दीहितो आज, कहि कहि राज राज, रहितो जो अपनी मतरिया हो।

माता का राज्य कोई दूसरा नहीं है—सिर्फ पुत्र के। पुत्र माता का अपना 'राज' होता है। यशोधरा अपने राहुल को दुलारते-पुचकारते हुए यही कहती है—'राहुल राजा भैया !' और 'मेरे बेटा भैया राजा'। अतः पुत्र माता के लिए राजा भी है और राज्य भी। भाभी के सामने अन्ततः दो ही बातों का पछितावा है। एक तो उपदर का निकृष्ट कार्य 'बंज के इहबलसि पगरिया' और दूसरा उजागर के लिए कि 'मुँह में ना पवलन आगि।' भाभी के हृदय का यही अमिट दाग है।

हिन्दू-शास्त्र के अनुसार मरने पर मुख में आग देने की परम्परा है। यह कार्य तब विद्यमान रहने पर सम्पन्न किया जाता है। उजागर की मृत्यु ऐसी हुई कि 'लास नाही मिलत बा लवास से'। ऐसी परिस्थिति में भाभी के हृदय का दाग मिटे तो कैसे ? भाभी की एक ही अभिलाषा है और वही अन्तिम अभिलाषा है—

हो मोर देवर दुलरु, ना तूं परल चारो दिन बेराम।

×

गर्दन पर चलल छुरी मुअलऽघल धस खूरी; हो मोर देवर दुलरु,
कइलस हतेयरवा अइसन काम।

× × ×

कहल भिखारीदास, कइलऽना कुछ दिन बास; हो मोर देवर दुलरु,
बचेपग में भगल तूं सुरधाम।

छछनवलऽ जियरा !

भिखारी को यदि सच्चा समाज-सुधारक कहा जाय, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। गिरे हुए हिन्दू-समाज के वास्तविक चित्र को लेकर भिखारी उसकी कड़ी आलोचना किया करते हैं। देश-काल की स्थिति के अनुसार वह किसी भी सामाजिक चित्र का यथार्थ रूप खड़ा कर दिया करते हैं। लगता है, जैसे वह चित्र हमारा रात-दिन का जाना-पहचाना हुआ हो। जिस घटना को हम समाज में रोजमर्रा होते देखते हैं, उसे ही हम भिखारी के सामाजिक नाटकों में पाते हैं। आज विवाह के प्रश्न को लेकर हमारा समाज अत्यन्त नीचे गिर गया है। पढ़े-लिखे समाज की बात हम नहीं कहते; मगर, हमारा ग्रामीण समाज तो इसका शिकार हो ही चुका है—इसमें शंका की गुंजायश नहीं। विवाह का सामाजिक दोष भिखारी को बराबर खटकता रहा है। भिखारी का 'बेटी वियोग नाटक' हिन्दू-समाज के बेमेल विवाह का एक जीता-जागता उदाहरण है। 'चटक' और 'लोभा' क्रमशः पिता और माता हैं। उस दम्पती से कन्या 'उतपातो' का जन्म होता है। समाज में किसी गरीब दम्पती को शादी करने में किन-किन अड़चनों का सामना करना पड़ता है, कहने की आवश्यकता नहीं। गरीबी के कारण बाध्य होकर माता-पिता अपनी कन्या को बेच देते हैं। चटक और लोभा के बीच भी यही बात तय होती है कि उतपातो को किसी धनी-मानी दुल्हे के हाथ बेच दिया जाय। राय पक्की होती है और उतपातो बेच दी जाती है।

बकलोलपुर नाम की एक बस्ती है, जहाँ पर शार्दूल नाम का कोई धनी-मानी व्यक्ति रहता है। शार्दूल बूढ़ा हो चला है। उसकी शादी नहीं हुई है उसके रूप-गुण के कारण। उसी दुल्हे को चटक पसन्द करने को बाध्य होता है और पैंतालो रुपये ले लेता है। अपने गाँव के किसी भी व्यक्ति से इसकी चर्चा वह नहीं करता। लोगों को इसकी जानकारी तब होती है, जब बकलोलपुर से बारात आती है। पालकी में बकायदे शार्दूल दुल्हा बैठा हुआ है। बारात दरवाजे लगाने आती है। सियाँ 'परिछावन' के लिए आती है; देखती है—दुल्हे की तसवीर। वे सन्न रह जाती हैं। उस विकट दुल्हे के स्वरूप का वर्णन सियाँ अपने परिछावन के गीत में इस प्रकार उपस्थित करती है :—

चलनी के चालल दुलहा, सूप के झटकारल हे।
दिअका के लागल बर, दुआरे बाजा बाजल हे।

आँवा के पाकल दुलहा, झाँवा के झारल हे।
कलछुल के दागल, बकलोलपुर से भागल हे॥
सासु के अँखिया में, अन्हबट बा छावल हे।
आइकर देखऽ बर के, पान चभुलावल हे॥
आम लेखा पाकल दुलहा, गाँव के निकालल हे।
अइसन बकलोल बर, चटक देव के भावल हे॥
मउरी लगावल दुलहा, जामा पहिरावल हे।
कहत भिखारी हउवन, राम के बनावल हे॥

भोजपुरी के टकसाली शब्दों के द्वारा झाँटुल का स्वरूप सजाया गया है। 'चलनी' से जब रूप में निखार नहीं आता, तो भिखारी चट 'सूप' का सहारा ले लेते हैं। इस प्रकार कुछ तो चलनी में छन गया और कुछ सूप द्वारा साफ हो गया। अब जो कुछ बचा, उसे 'झाँवा' से मल-मल कर साफ कर दिया गया। झाँटुल के शरीर में कहीं-कहीं काला जो दाग दिखाई दे रहा है, मालूम होता है 'कलछुल के (गरम करके) दागल' हो। जैसे दीमक काठ को खा जाता है, उसी प्रकार उस दूल्हे का अस्थि-पंजर रह गया है। उसका समस्त शरीर झाँझर हो गया है। अस्थि पंजर, वृद्धत्व, चमड़े की सिकुड़न, काले धब्बे तथा चेचक के दाग इत्यादि से सुशोभित दुल्हे को देखने के लिए स्त्रियाँ लोभा को चुनौती देती हैं—'सासु के अँखिया में अन्हबट बा छावल हे।' बिना दाँत के दूल्हा पान 'चभुला' रहा है। इस पके आम का क्या ठिकाना ? आज है, कल नहीं। परिछावन के समय दूल्हे का रूप कुछ दूर रहता है। रूप निकट आता है—मंडप में। स्त्रियाँ पुनः दूल्हे का दर्शन करती है और जो कुछ देखती हैं, उसे अपने मीठे स्वर में गीत गाकर अभिव्यक्त करती हैं—

रचलन रूप भगवान, दुलहा के।
मउरी में लागल फूल, जीव देखि जाता भूल; मुहवाँ में खिलत बाटे पान दुलहा के।
कंठा हऽ असल सोना, केहु मति करिहऽ टोना; देखला पर छूटत बा परान दुलहा के।
कुरता चदर लाल, गरदन में मोहर माल; माँडो में भइल रसखान दुलहा के।
खोजलन चटक बाबू करि के बहुत काबू; भइलन खूब हलकान दुलहा के।
आइल बरात गाँव, दुनिया में भइल नाँव; बर बूढ़, कनिया जवान दुलहा के।

चटक को ऐसा दुल्हा प्राप्त करने में मामूली परेशानी नहीं हुई थी। तब जाकर झाँटुल से भेंट हुई थी। इस विवाह में चटक की तो प्रसिद्धि हो ही गई, उस गाँव की भी कम ख्याति नहीं हुई, जहाँ पर 'बर बूढ़ कनिया जवान' की शादी हुई। दुल्हे के साज-शृंगार का ठीक वही हाल है, जैसे 'छुछुन्दर के सिर पर चमेली के तेल।' दुल्हे के संयोग से उसके कीमती वस्त्राभूषणों की कीमत भी घट रही है।

रूप का प्रताप इतना है कि 'हार बेलि पहिरावो चम्पक होत।' यदि चम्पे का ही हार पहना दो, तो 'जानि परे सिय हियरे जब कुम्हिलाइ।' भोजपुर के लोग भद्दे आभूषणों पर ही बिके रहते हैं। भिखारी ने इन भद्दे आभूषणों के प्रति व्यंग किया है। झाँटुल को गहनों की क्या कमी ? उसका तो विवाह ही होता है रुपये के बल पर और गहनों के आधिक्य से। उतपातो के लिये तो आभूषणों की ढेर लगी हुई है। 'गुरहथी की झांकी' लीजिये—

एहि सुघर भसुर के कइसे देइहों गारी हे।
सिया जोग ले अइलन कुसुम रंग सारी हे॥
गोटा पटा जरीदार सुभग किनारी हे।
अँचरी जरकसी में गांठ झंझकारी हे॥
लाल चदर लाल लहँगा जरीदार धारी हे।
बीचे बीचे लालमति नग बइठारी हे॥
एही सुघर भसुर के जाऊँ बलिहारी हे।
सिया जोग ले अइलन भूषन सवाँरी हे॥
नथिया बुलाक बेसर झुलनी लगाई हे।
मांगटीका बननी में हीरा जड़ाई हे॥
कनफुल झुमक झमाझम झमकाई हे।
बिजुली छटा समान बिन्दुली सुहाई हे॥
सुन्दर सिन्होरा लाल सेन्दुर भराई हे।
सन सोहगइला तेहि मध्य में धराई हे॥

भोजपुरी-क्षेत्र के आभूषणों की नामावली विशेषत: इस प्रकार है—मांग टीका, नथिया, बुलाक, बेसर, झुलनी, बननी, कर्णफूल तथा झुमक। ये आभूषण मुख-मंडल की शोभा बढ़ानेवाले हैं। इनके अतिरिक्त समस्त शरीर पर भी आच्छादित रहने-वाले अन्यान्य आभूषण हैं, जिनका वर्णन स्थानाभाव के कारण नहीं किया जा रहा है। सुहाग की विशेष वस्तुएँ हैं—टिकुली, बिन्दुली और सिन्होरा, जिसमें 'सन सोहगैला' के साथ 'भँगनी' का सेंदुर रखा जाता है। हिन्दू-सती उसी अपने सेंदुर रूपी 'अहिवात' को आजीवन सँजोती है—'बल हो तो सिन्दुर बिन्दु यह, यह हर नेत्र निहारो।' हिन्दू-ललना का सिन्दूर अनमोल धन है। हिन्दू-विवाह का आशय भी बहुत ही गम्भीर है। वह आशय उद्देश्यपूर्ण है। मानव-जीवन का चरम उद्देश्य उसमें निहित है। विवाह की सारी विधियाँ एक से बढ़कर एक सारगर्भित हैं। भोजपुरी क्षेत्र में रश्म है—इमली घोंटाने की, लावा भेराने की तथा गुरहथी करने की। दुल्हे का मामा इमली घोंटाता है। कन्या का भाई लावा भेराता है।

दुल्हे का अग्रज गुरहथी का कार्य सम्पन्न करता है। समस्त वस्त्राभूषणों का दान दुल्हे के अग्रज द्वारा ही कन्या को प्राप्त होता है। वही अग्रज कन्या का 'भसुर' होता है। आज भी भोजपुरी क्षेत्र के गाँवों में जब गुरहथी के गीत औरतें गाती हैं तो बड़े-बड़े ज्ञानी-ध्यानी का कलेजा पसीज जाता है। उत्पाती बेटी के मड़प में गुरहथी का निम्न गीत गाया जा रहा है :—

बटहल बरिअतिया ओरितर बांधि बांधि पगरिया।
करिया करिया देखि देखि हंसत बाटे नगरिया॥
काढ़ि दs चटक बेंवा अपनी पुतरिया।
लगन मुहुरत बीतत बाटे शुभ घरिया॥
बढ़का भइया तानि दीहले अपनी चदरिया।
धीरे धीरे लेइ अइले घर में से बहरिया॥
गाईं के भिखारी ठाकुर कइले भसखरिया।
काहे ना ले अइलs भसुर अपनी मतरिया॥

कितना मोहक दृश्य है! सजे हुए बाराती के लोग अपनी अपनी पगड़ी बाँधकर मंडप के अगल-बगल छप्पर के नीचे बैठे हुए हैं। उस शुभ मुहूर्त में कन्या मंडप में लाई जाती है। खुलेआम नहीं; क्योंकि, यह हिन्दू विवाह है। कन्या का बड़ा भाई अपनी चादर का पर्दा तैयार कर देता है और चादर की ओट से ही 'धीरे-धीरे लेइ अइले घर में से बहरिया।' चटक—जैसे पिता की खाल छाड़ दें, तीनों वस्तुतः जो पिता होता है, उसका कलेजा बैठ जाता है—कन्या को घर से बाहर करते समय। अब देखिये 'वर-दुलहिन बैठे एक आसन', विवाह और उसके उपरान्त का दृश्य—

कुछ रात बीति गइले, रात०; लगन में शादी भइले, महगह करत बा अगनवा हो लाल
नोह में महावर लाल, नोह,सेंदुरा से भरल भाल,रचिरचि बान्हल बा कंगनवा हो लाल
वर दुलहिन सोभे, वर०; देखि देखि मन लोभे; तनवा में भरल बा गहना हो लाल
कहत भिखारीनाई, कहत०; लउवा मरेबलनभाई;भाईजी के मनवा मगनवा हो लाल

निस्तब्ध रात्रि का पिछला प्रहर। शान्त स्निग्ध वातावरण। चटक का देदीप्यमान मंडप। उस मंडप में उत्पाती और लाडिली की कौतूहलबद्धक जोड़ी। उस युगल छवि की छटा अवर्णनीय। मंडप की शोभा से लहलहाता हुआ समस्त आंगन और आंगन के प्रकाश-पुंज से महमहाता हुआ प्रत्येक घर। नवेन्द्र लालिमा का साम्राज्य। कहीं 'नोंह में महावर लाल', तो कहीं 'सेंदुरा से भरल भाल'। सार्थक हो रहा है—'जित देखौ तित लाल'। तत्पश्चात् 'रचि रचि बान्हल बा कंगनवा'। उसकी मर्यादा का उल्लेख किन शब्दों में किया जाय। वही तो अजर-अमर बन्धन है,

ब्रह्मास्त्र से भी मजबूत। उधर माता लोभा मगन ही है। इधर उनतानो भी कम चिन्ता-ग्रस्त नहीं; क्योंकि, विदाई का समय भी सन्निकट ही है। उनपासो झट माता लोभा से लिपट जाती है—

जमले भइया माहुर दे के काहे ना दिहलू मारी।
हमरा के नाहक पाले में सांसति सहलू भारी॥

× × ×

बानी डाला बयस के थोरी, नइखे बुद्धि बिचारी।
जो कुछ चूक होई अनजानत, माफ करहु महतारी॥

लोभा उसे गोद में सम्हालकर ढाढ़स देती है—'चुप होखऽ प्रान के अधारी सुकुमारी प्यारी'। निर्दयी पिता चटक भी ऊपर से सहानुभूति प्रकट करता है—'सुनुधि सुलोचनि भवन मोर सून कइके, आवुए से सपना हो गइलू मोर बबुई।' यह झूठी सहानुभूति माता लोभा को बर्दाश्त नहीं होती। वह आड़े हाथों चटक को खबर लेती है—

अपने मन से भइलऽ भया। बेटी काटि के डललऽ कूआ॥
बूता बर से सादी कइलऽ। गांठि घर के चिल से गइलऽ॥
अइसन जग में कइल ना कोई। जिनगी भर मोर बबुई रोई॥
दिल से दया दूर कइ दिहलऽ। अजस के पातक सिर पर लिहलऽ॥
पीता होके दिहलऽ डंस। अब ना बेटी के बड़ी बस॥

× × ×

बाप ना हउअऽ हउअ जोन। बबुई के बा नाया सोन॥
तोहरा आंखि में परल धूर। कइलऽ चुड़वा बर मंजूर॥
कहे भिखारी लालच कइलऽ। लोक बेद के इज्जत खइलऽ॥

गरीबी के कारण लोभा यद्यपि बेटी बेचना चाहती थी; मगर, बूढ़े वर से शादी करना नहीं चाहती थी। वर देखने की जिम्मेदारी थी चटक पर। चटक निकल गया लोभा की नजरों में 'भूत' और 'जोन'। वह अपनी ही पुत्री को जीते जी चट कर गया, खा गया। लोभा का सहारा पाकर उनपासो के धैर्य का बांध टूट पड़ता है। वह अत्यधिक वेग से बिलखने लगती है—

हाय! पिता, हा भइया मोरी। भइया तोहरा गोड़ के चेरी।
हाय! भउजी सब सखी सयानी। हमसे काइ भइल बुकसानी॥
हाय! गांव के कुल परिवारा। काहे धसोरत बीचहिं धारा।
आफत में केहू काम न आवत। केहू ना बाबू के समुझावत॥
एह घरी सब होखऽ सहाई। बिदा करे पावे जनि माई

हाय रे, बेटी-वियोग ! बेटी तो दूसरे के ही घर की शोभा है। जिस दिन वह जन्म लेती है, उसी दिन से उसकी गणना बाहर के लिए कर दी जाती है। फिर भी जब वह कुछ समय तक सेवा-सुश्रूषा करके जाने लगती है, तो वह वियोग असह्य हो उठता है। बेटी की विदाई हृदय-विदारक हो जाती है। उस विदाई से पत्थर का कलेजा भी पानी बनकर बह चलता है और उतपाती-जैसी बेटी का वियोग तो वियोग है ही नहीं। वह वियोग नहीं मौत है। उतपाती मौत के मुँह में, काल के गाल में जा रही है। उसका पिता ऐसे दुल्हे के साथ उसे भेज रहा है, जो घर पहुँचकर दो चार दिन भी जीने लायक नहीं। इसी खन्दक को देखकर उतपाती भयभीत हो उठी है और सबको गुहराती जा रही है, निहोरा करती जा रही है।

भिखारी के जीवन में सिर्फ वियोग-ही-वियोग है, वास्तविक वियोग समाज द्वारा तिरस्कृत वियोग और सामाजिक कुरीतियों से उत्पन्न हास्यास्पद वियोग। भिखारी देखते हैं कि कहीं माता अपने पुत्र के लिए बिलख रही है, कहीं पत्नी अपने पति के लिए बेचैन है, कहीं भाभी अपने देवर के लिए तड़प रही है और कहीं बेटी बूढ़े पतिदेव को देखकर काँप रही है—ऐसा न हो कि उस वृद्ध का यह (युवती) बेटी स्पर्श करे और उसके प्राण पखेरू उड़ जायें। भिखारी के जीवन में इस प्रकार अनेकों महिलाओं के चित्र मिले हैं, जिनका आकलन उन्होंने अपने तरह-तरह के नाटकों में किया है, जिनकी करुण कथा से भिखारी की कृतियाँ जगमगा रही हैं।

उन करुण-कथाओं में कुछ का दिग्दर्शन तो हो चुका और कुछ का यथास्थान किया जायेगा। भोजपुरी नाटकों के अभिनय और रस-निष्पत्ति में भिखारी को उतनी ही सफलता मिली है, जितनी किसी भी उच्च कोटि के कवि को। ऊपर की चौपाइयों के पढ़ते समय तुलसी की एक अर्द्धाली स्वतः याद हो आती है—'हा! जयदेव और रघुराय।'

'उतपाती' इस प्रकार उस बूढ़े दुल्हे के साथ ससुराल चली जाती है। शीघ्र ही चटक अपनी बेटी से मिलने जाता है। बेटी उस प्रेत रूपी पिता से अपने दुःखों का निवेदन करने बैठती है। उस विकट विलाप को लिखने में कवि भिखारी का हृदय बैठ जाता है। फिर भी पत्थर की छाती बनाकर वह बेटी-विलाप का श्रीगणेश करते हैं—

सिरी गनेसाथनम, भइ गइलीं काल हम, पूरुब में कवन कसूर कइलीं बाबूजी।
जेहि लागि आजु हम, दुनिया से भइलीं कम; घर देखि घर ना सोहात बाटे बाबूजी।
सिकुरल जइसे चाम, सुखल चुअल आम; मुँहवाँ फटलका लेदरवा हो बाबूजी।

आँखि से सूझत कम, हरदम खींचत दम; मायका के दारवा चंवरवा हो बाबूजी।
मुँहवाँ में दाँत नहीं, भात चुभे गाल माहीं; आवला प भीतरी समुन्दर हो बाबूजी।
पति कर देखि गति, पागल भइल मति; रोई रोई करीला बिहान मोर बाबूजी।

× × × ×

हुकुर हुकुर छाती, करत बाटे दिन राती; अधजिव दुलहा पसन कइलऽ बाबूजी।
घरी घरी होत छरी, कफ से भरल नरी; नरक बितत दिन बीति मोर बाबूजी।
पति के बुढ़ाई देखि, मन के गइल सेखी; धनवा भइल कलपनवा हो बाबूजी।
रोअत बानी सिर धुनि, इहे छलनल सुनि बेरी मति बेवे दीहऽ केहु के हो बाबूजी।

उलपातो' का प्रथम प्रश्न है पिताजी से—'पूरुब में कवन कसूर कइलों बाबूजी!' यह पूर्व-जन्म का कसूर है कि पिता निर्दयी मिल गया। तुलसी ने लिखा है कि किसी प्रकार के पति का अपमान नहीं करना चाहिए; मगर, चटक-जैसे पिता की कारबाई को यदि सुपुत्री तोड़ दे, तो मैं इसे उतना ही पवित्र और पुण्य कार्य मानता हूँ जितना कि अनेकानेक भक्तों का घेरा तोड़ना—'बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज बनितन्हि'। उलपातो के प्रश्न के मूल में है—साँदुल-जैसे दुल्हे की शादी, जो लोभी पिता द्वारा सम्पन्न हुई है।

इस दुल्हे के स्वरूप का विश्लेषण उलपातो पूरी छानबीन करने के उपरान्त उपस्थित करती है। दुल्हे के चमड़े बुढ़ापे के कारण इतने सिकुड़ गये हैं, जिसे समझाने के लिए 'सुखल चुअल आम' का दृष्टान्त देना पड़ता है। मुखारविन्द के लिए सर्वश्रेष्ट ही है—'फटलका खेदरवा'। कपड़ा जोड़-बटोरकर स्त्रियाँ 'खेदरवा' तैयार करती हैं। वही जब पुराना होकर फट जाता है, चिथड़ा हो जाता है, तो उसे 'फटलका खेदरवा' कहा जाता है। इधर वृद्ध साँदुल की आँखों से दिखाई पड़ता ही नहीं और सदा दम-पर-दम खींचता रहता है। मालूम होता है उसे दमे की भी शिकायत है। सिर के बाल इतने सफेद हो गये हैं कि 'चँवर' की उपमा सटीक बैठ रही है। बत्तीसो दाँत साथ छोड़ चुके हैं। खाने पर भात गाल में चुभ (गड़) जाता है और खुदा ना खास्ते यदि वह बूढ़ा अपने मुँह को फैला देता है, तो देखनेवालों को उसका खुला मुख समुद्र की तरह अथाह दिखाई देता है। ऐसे दुल्हे के साथ पलंग पर बैठकर उलपातो रो-कलपकर रात्रि व्यतीत किया करती है। उस 'अधजीव' (अधमरे दुल्हे) की छाती 'हुकुर हुकुर' बराबर चलती रहती है, जैसे अब मरा, तब मरा। खाना तो उसे पचता ही नहीं। क्षण-क्षण में पाखाना होता रहता है। नाड़ियाँ कफ से सदा भरी रहती हैं। इसी सेवा-कार्य में (नरक

फेंकने में) उतपाती की सारी जिन्दगी कटेगी, जिसकी सूचना वह अपने पूज्य पिता जी को दे रही है। उतपाती की जवानी की शोखी भूल जाती है; क्योंकि, वृद्ध को जहाँ उसने एक बार भी हृदय से लगाया कि वह मरा। चटक पुत्री का 'छछनल' सुन रहा है, सुनता जा रहा है। भोजपुरी के 'छछनल' का अर्थ है 'रो-कलप कर रकटाना'। जवान लड़की उतपाती अपनी साध पूरी न हो सकने के कारण रो-कलप कर 'रकट' रही है। वह पिता से जवानी की लालसा सुना रही है; लेकिन, उस निर्दयी पिता के पास उसका कोई समाधान नहीं, हो भी क्या सकता है? अतः वह काठ का उल्लू-सा बोलता तक नहीं और बेटी कहती जा रही है—

छछनबलऽ जियरा, बाबू मोर।
दिने रात कबो कल ना परत बा, गुनत गुनत होता भोर।
बाल-बृद्ध एक संग कइ दीहलऽ, पथल के छाती बा तोर।
छछनबलऽ जियरा, बाबू मोर।

ए मोर जाउत दुलरु !

गुणवती, दैवात् नहीं, अनमेल विवाहादि सामाजिक दोष के कारण, विधवा बन जाती है। विधवा बनकर आजीवन रोती-बिलबिलाती रह जाती है। एक तो जवानी पर संयम, दूसरे परिवार के लोगों का ताना। तलवार की धार पर चढ़कर विधवा को अपना शेष जीवन काटना पड़ता है। वर्त्तमान युग के लिये विधवा की समस्या बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उस समस्या का हल निकालने के लिए आज तक कितने सामाजिक संगठन तथा संस्थाओं ने प्रयास किया; फिर भी, उन सामाजिक संगठन तथा संस्थाओं से विधवाओं के लिए कोई समुचित राहत नहीं मिली; वरन्, उन समाज सुधारकों के कारण विधवाओं का जीवन अत्यधिक भयंकर ही बनता गया।

इधर जब से हिन्दी-साहित्य में कहानी और उपन्यास का युग प्रारम्भ हुआ है, तब से ऐसी अनेक कहानियाँ और ऐसे उपन्यास लिखे जा चुके हैं, जिनमें विधवाओं के प्रति काफी संवेदना भरी हुई है। प्रणेताओं ने दिल खोलकर समाज को सुझाव दिया है कि समाज विधवाओं को निःसंकोच अपना ले। मात्र हिन्दू समाज ही विधवाओं के प्रति क्रूर दृष्टिकोण अपनाये हुए है। अतः उसे चाहिए कि वह भी विधवा के जीवन को सुखमय बनाने का यत्न करे।

मूलतः भिखारी समाज सुधारक नहीं थे; लेकिन, उन्होंने 'विधवा-विलाप नाटक' लिखकर समाज के सामने एक दृष्टान्त अवश्य रखा है कि समाज उसे देखे, समझे और उसका परिहार करे। उनके 'बेटी बिलाप' में तो एक बूढ़े का भी सहारा प्राप्त है; मगर, विधवा-विलाप में तो जैसे किसी प्रकार के आलम्बन का नाम ही नहीं है। गाँवों में इन विधवाओं को 'मुसमात' भी कहते हैं। प्रेम और सचाई से शायद ही कोई परिवार 'मुसमात' की सेवा करता है। जो भी करता है, वह इसी लालच में कि उसे 'मुसमात' का धन मिल जायेगा। समाज की ठुकराई हुई अबला-सबला वियोगिनी विधवा से बढ़कर दलित और पतित कोई और नहीं है। भिखारी का कहना है कि विधवाएँ आकाश से नहीं चू जातीं, उन्हें समाज बनाता है। उसका एकमात्र कारण है—बेमेल विवाह। बेमेल विवाह के कारण लड़की विधवा होने की आशंका से थर्रा उठी है—

गिरिजा कुमार करऽ, दुखवा हमार पारऽ;
हर हर हरकत लोर मोर हो बाबूजी !

पड़ल गुनख भूल गइलऽ, समदल भेंड़ा भइलऽ
सउदा बेसाहे में ठगइलऽ हो बाबूजी !
केइ अइसन टोना कइल, पगल तोहार मति भइल;
नेटी काटि बेटी के भसवल हो बाबूजी !
रुपया गिनाई लिहलऽ, पगहा धराई दिहलऽ;
बेरिया के छेरिया बनवलऽ हो बाबूजी !
साफ करे आँगन गलि के, छिया लोटा जूठ मलि के,
हरदम रहली टहलिया में बाबूजी !
गोबर करसी कइला से, बिअहर छतिहर धइला से;
कबना करनिया में चूकलीं हो बाबूजी !
बर खोजे चलि गइलऽ, माल ले के घरे धइलऽ;
दादा लेखा खोजलऽ दुलहवा हो बाबूजी !
अइसन देखवलऽ दुख, सपना भइलऽ सुख;
सोनवा में ढलल सोहागवा हो बाबूजी !
बुढ़उमे सादी भइल, सुख वो सोहाग गइल;
घर पर हर चलवावलऽ हो बाबूजी !

× × ×

घुट्ठी पर ले धोती तोर, आस नात कइलऽ मोर;
पगली पर बगली भरवलऽ हो बाबूजी !
हँसे लोग गँइया के, मूरत देखि के सँइया के;
खाइ के जहर मरि जाइब हम हो बाबूजी !

× × ×

प्राननाथ बाड़न पति मोर, चढ़ल बा जवानी जोर;
जरिया के अरिया से कटलऽ हो बाबूजी !
अगुआ अभागा मुँहलागा अगुआन हो के;
पूरी खाके छूरी पेनि दिहलनि बाबूजी !

× × ×

अबहूँ से करऽ चेत, देखि के पुरान सेत,
डोला काढ़ि मोलवा मोलइहऽ मति बाबूजी !
आपन होले तेकरो के, पूछे आवे सेकरो के;
बीहऽ मति, पति दुलहिनि जोग बाबूजी !

× × ×

इहे कहि के जात बानी, होई अबकी जोखन हानी
नाहीं देखबि नइहर नगरिया हो बाबूजी !

मानव जीवन की सारी जिम्मेदारियां विवाह की सफलता पर आश्रित है। विवाह कब हो, कैसा हो, कहाँ हो, किसके साथ हो, हो कि न हो आदि-आदि समाधान मानव जीवन को उन्नतिशील बनानेवाले तथा खानदान बनानेवाले है। मनुष्य के समस्त दुःखो का कारण विवाह नाम की संस्था है। वेमेल विवाह भिखारी की दृष्टि में समाज के सारे दुःखों का मूल है।

'साकेत' में उर्मिला की तस्वीर अंकित करते समय गुप्तजी के सामने यशोधरा की तस्वीर खड़ी हो गई थी। भिखारी का जब बेटी वियोग समाप्त हुआ होगा, तो उनके सामने विधवा की हृदय-द्रावक तस्वीर नाचने लगी होगी। बेटी वियोग में जो थोड़ी-सी कमी रह गई थी, उसकी 'विधवा-विलाप' में पूरी हो गई। 'झाँटुल' दूल्हे के चित्र से बढ़कर आकर्षक चित्र यहाँ पर अंकित है। प्रस्तुत दूल्हे को उसकी पत्नी 'दुल्हा' तक कहने का साहस नहीं करती। चूँकि 'दादा लेखा खोजलऽ दुलहवा हो बाबूजी'। बाबूजी सच पूछिये तो वस्तुतः 'समदल भोड़ा', आमन्त्रित भाखल भोड़ा के सदृश ही है।

किसी युवती का विवाह वृद्ध के साथ कर देना, भिखारी की दृष्टि में विवाह ही नहीं है। वह है—'नेटी काटि' बेटी को गर्त्त में घुसा देना, 'घर पर हर' चलाना अथवा 'छाये भवन पर पावक धरेऊ' तथा जीवन के 'जरिया के अरिया से' काटना। यों हिन्दू की बेटी तो गाय के बराबर है। उसका पिता चाहे जहाँ उसका 'पगहा' धराकर भेज दे। जिस परिवार में बेटी पैदा होती है, उस घर के छोटे-बड़े सारे कार्य वह निश्चित ही करती है। कुमारी लड़कियों के कार्य गाँवों में निम्न प्रकार के हैं :—'साफ क के आँगन मलि के', 'छीपा लोटा जूठ मलि के' तथा 'गोबर करसी कइला से', पिअहा छुतिहर धइला'। मतलब किसी भी 'टहलिया' में न उससे चूक होती है और न किसी भी 'करनिया' में भूल। ऐसी 'चेरिया' बेटी को 'छेरिया' बनाना अर्थात् हलाल करने योग्य बनाना पिता के लिए विकट अघ है। मिलता क्या है, उस पिता को कि 'रुपया गिनाइ लिहलऽ' और 'पगली पर बगली भरवलऽ'? ऐसे विवाह का समर्थन करनेवाला, 'पूरी खा के छूरी पेसि' देनेवाला 'अगुआ अभागा' ही है, रौरव नरक-गामी है।

अन्त में, होता है वही जिस बात की आशंका रहती है। मैके से आने के कुछ ही दिन के बाद पति चल बसते हैं। उसके पति का भतीजा है, जो विधवा चाची को धन के लोभ से अपने साथ रख लेता है। भतीजे का नाम है—उदवास। यथा नाम तथा गुण। भिखारी अपने पात्र का नाम ऐसा देते हैं, जिससे उस पात्र

का चरित्र-चित्रण हो जाता है। 'उदबास' चाची का उदबास करने में लग जाता और अन्त में निकालकर ही दम लेता है। अब विधवा अपने भतीजे से अर्ज करती है—

कवन कसूर कइलों घर से निकालल चहलों; छूटल जात बा नइहर ससुरवा हो बबुआ !
पर पति साथ रति, कबहूं ना भइल मति; धनवां करनवां तेयाग मति हो बबुआ !
बबुआ समुझऽ मन, तोहरे हउ सब धन; काकी करिहन जुठवा के असरा हो बबुआ !
दिन राति दुनो सांझ, परबा के करबि काम; तुंगरी किनबि हम पलोह के हो बबुआ !
तोहरा मन में भइल सक, भइल बानी हम सक; किरिया कियालऽ कालीमाई के हो बबुआ !
हम करबि दुख भोग, तोहरा के हंसी लोग, घात मति करऽ सुसुमात से हो बबुआ !
कर मति दोसर फेलऽ, अंगूटा के टीप लेलऽ देत बानी धन खुसी मन से हो बबुआ !
कहले बाड़ऽ सान-सेखी, विधवा के दुख देखि, दया नइखे लागत अभागिनी प बबुआ !

× × ×

आजु रहिते सामी मोर, केकरो ना लागित जोर; गतर के गहना ना खोलत हो बबुआ !

विधवा का हाल ठीक वही है, जो धोबी के कुत्ता का। धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का, वैसे ही विधवा न मैके की न ससुराल की। प्रस्तुत विधवा की दशा तो और भी भयानक है। उसका भतीजा नित्य नया एक बखेड़ा उसके सामने ले आता है। कभी लाछना लगाता है। कभी तरह-तरह की बातें बकता है। धन लेने के अनेक उपाय रचता है। विधवा के शरीर के सारे आभूषण उसने उतरवा लिये हैं। फिर भी उसे चैन नहीं। 'उदबास' विधवा चाची को एक दिन तीर्थ कराने के बहाने जंगल में ले जाता है और उसे जान से मार देने की तैयारी करता है। विधवा को आँखों के सामने अंधेरा छा जाता है। वह मन-ही-मन भगवान् को याद करने लगती है और उसके मुँह से सहसा निकल पड़ता है—

मरलसि रे दइया, मोर जान, पापी निरदइया !
पति सुरपुर पतनी कलपत बन, होखऽ भगवान सहइया।
गहना खेत मकान लिहलसि, जाउत; माल हथइया।
पंचित पांक में पैर धसल बा, जुआ चढ़ल समइया।
तापर नीच चोंच मारन हित, करत अनेक उपइया !

× × ×

गउ, गरीब, विधवा, गंवार, सिर नित दुख बहत सबइया।

यही है विधवा की रोमांचकारी दशा ! उसकी जायदाद चली गई। धन चला गया। पति चला गया। सर्वस्व चला गया। रह गई— असहनीय जवानी। वह भी

शान्तिपूर्वक कटने नहीं पाती। एक तो यौवन के भार से वह स्वयं 'पाँक' में धँसी जा रही है, दूसरे उसकी विवशता के समय में ऊपर से 'गीध-चोंच' मार रहा है। भिखारी 'गउ, गरीब विधवा, मँवार' को दशा पर तरस खा रहे हैं। 'जाउत' का अर्थ भतीजा होता है। विधवा उस 'जाउत' से अन्तिम वात्सल्य पूर्ण विनय करती है-

ए मोर जाउत दुलरु ! काइ तोहार कइलों हम नुकसान।
बन में रोअलो काकी, अब का रख ले बाड़ऽ बाकी ?
ए मोर जाउत दुलरु, भइल हितनाना में बखान।
कवना कारन करबऽ घात, खोलि के कहि दऽ बात;
ए मोर जाउत दुलरु, आजुए से करिलेजि गेयान।
नगर देखा दऽ, तनि दरसन करा दऽ;
ए मोर जाउत दुलरु, लागल बा पतोहिया में धेयान
कहत भिखारी दास, भेजि दिहलऽ सतनास,
ए मोर जाउत दुलरु, अब आगा करबऽ का बेयान ?

अब होइबू लरकोर !

भिखारी के एक नाटक का नाम है—'पुत्र-बध-नाटक'। 'पुत्र-बध' के कुल मिला कर चार पात्र है। चपाट राम नामक एक व्यक्ति है। उसकी दो पत्नियाँ है : एक बड़ी, एक छोटी। बड़ी पत्नी से चपाट को एक पुत्र प्राप्त होता है। पुत्र का नाम चेत राम है। कुछ दिन चारों को एक साथ रहने आनन्दपूर्वक निकल जाते हैं। एक दिन बड़ी गोतिनी अपने 'नैहर' जाने की तैयारी करती है। अपनी 'छोटी गोतिन' (सवती) के ऊपर चेत का भार देकर वह नैहर के लिये प्रस्थान करती है। जाने से पूर्व वह कुछ छोटी गोतिन को समझाती है—

ए छोटकी, चललीं नइहरवा !
अबले ना कतहूँ निकललू रहलु नित घरवा।
जाके ले अइह पानी, निगिचे बा इनरवा।
बेसी दिन ना लागी, आईबि करिके दोदरवा।

'बड़ी गोतिन' के इस कथन से असाधारण प्रेम 'छोटी गोतिन' के प्रति अभिव्यंजित होता है। बड़ी गोतिन उसे बाहर नहीं होने देती थी। बाहर के सारे कार्य वह स्वयं सम्हालती थी। अतः अब छोटी गोतिन को बाहर के काम के लिए बाहर निकलना पड़ेगा —पानी आदि लाने के लिए। इसके लिए बड़ी गोतिन उसे साहस देती है कि 'निगिचे बा इनरवा'। 'निगिचे' का अर्थ एकदम करीब, बहुत ही निकट। अब छोटी गोतिन बड़ी गोतिन के सामने निवेदन करती है—

चलि जात बाड़ नइहरवा, अकेला हमें छोड़ि के।
जइबु त बबुआ उदास हो जइहन, जब सुधि आई ममहरवा।
पहिले तूँ हमरा से एगो करार करऽ, चलि अइहऽ चढ़ते कुअरवा।
देखिह्ऽ जिउतिया के होखे ना पावे, घर लरिका निसहरवा।

छोटी गोतिन भी अपना कम प्रेम नहीं प्रकट करती, लेकिन, छोटी गोतिन के प्रेम में बड़ी गोतिन के प्रति प्रेम का मुलम्मा है, वास्तविक प्रेम-तत्व नहीं। बड़ी गोतिन के जाने से छोटी गोतिन को मात्र दुःख है कि उसका लड़का चेत— 'जइबु त बबुआ उदास हो जइहन'। अतः पुत्र चेत का ख्याल रखते हुए—

'चलि अइहऽ चढ़ते कुआरवा'; क्योंकि, आश्विन में जीवित पुत्रिका-व्रत पड़ता है; जिसे प्रत्येक माता अपने पुत्र के कल्याणार्थ मनाया करती है। अतः 'जिउतिया' में उसका लड़का आश्रय-हीन न होने पावे, यही छोटी गोतिन के कहने का अभिप्राय है; मगर, बड़ी गोतिन बड़े प्यार और सचाई से बराबर सीख देती है—

अब हम चललीं नइहर, देखिह आँगन लरिका घर,
जब अइहन सवहर, कहि दीहऽ हलिया।
दीहऽ लोटा भरि के जल, करीहऽ स्वामी के टहल,
मानिऽ सवतिन के कहल, चलिहऽ नीमन चलिया।

इस प्रकार उचित शिक्षा देकर बड़ी नैहर चली जाती है; मगर, छोटी पर उसकी शिक्षा का असर तनिक भी नहीं पड़ता। वह अपनी आदत के कारण देर तक सोती रहती है। काम-धंधा में उसका मन नहीं लगता। चेत खाना माँगता है, तो वह तरह-तरह के बहाना बनाया करती है। पति जब घर पर आते हैं, तो उनकी सेवा नहीं करती। चेत को फुसला कर पढ़ने के लिए भेज देती है और पति चपाट को पीट-पाट कर ठीक कर लेती है। बड़ी के जाने से उसे परम स्वतन्त्रता मिल गई है और कोई भी काम करने के लिए पूरी छूट मिल गई है। समूचे घर में छोटी अकेली मनमानी खेल खेल रही है। पति के आने पर झट उनके सिर पर बोझ चढ़ा देती है —

पिया हमरा के, हमरा के हँसुली दे द अनवाई
बड़का भतीजवा के गवना हवहिस, का जाने अइहन बोलावे छोट भाई।
सिकरी जोसन बाजू कंकना, पहुँची पुरनका दे द गरवाई।
पटना डाका के ललका चादर, सबुज गोटा दीहऽ लगवाई।
कहत भिखारी तीनपतिया झुलनी, नाहीं त नाक बसहीं रहि जाई।

मर्द चपाट राम हाथ जोड़ कर विनय सुनाते हैं—

छीस में बोलत दाढ़ जानी, राखऽ पगड़ी के पानी चानी भइल बाटे मँहगा लगनवा में।
बबुआ भइलन सादी जोग, हँसी टोला परोसा लोग, रोग हमरा बाटे तोहरा टोपदनवा में।

गहने का सवाल लेकर पति-पत्नी में काफी रक-झक और बहस होती है। चपाट बहुत ही अनुनय-विनय करते हैं; मगर, उसकी छोटी पत्नी समझती नहीं। वह अपनी ही माँग पेश करती रह जाती है। उसके निकट उसके शौक-शृंगार का महत्त्व अधिक है। लोक-लज्जा, कुल की इज्जत का प्रश्न उसके लिए नहीं के बराबर है। जब किसी प्रकार वह नहीं समझती, तो चपाट हैरान होकर बाहर हट जाते

है। उनके घर से बाहर हटने पर एक गहने की फेरी करनेवाला चिल्लाता हुआ आता है—

लोही केहू सउदा हमारी हो, गुदरी में बा दोकान।
सोना चानी के सब कुछ जेवर, हँसुली बा ओजन भारी हो।
ककना पहुँची ओसन बजुआ, टटके हउये तइयारी हो।
× × ×
खाम जो ठहरी नो दाम न लेहब, कहस भिखारी लबधारी हो!

गहने बेचनवाले की आवाज पाकर चपाट की छोटी पत्नी घर से बाहर निकल जाती है। उस व्यापारी को बुलाकर घर में ले जाती है। उससे सब गहना खरीदती है। इतने में चेत आ जाता है और व्यापारी को डाँटकर घर से बाहर कर देता है। अपनी सौतेली माँ को समझाता है कि स्त्री को पर-पुरुष से अकेले में बातचीत नहीं करनी चाहिए। सौतेली माँ पुत्र चेत से बात बढ़कर उलटा-सीधा समझा देती है। चेत पुनः पढ़ने चला जाता है। सौतेली माँ उस पुत्र को मारने की तदबीर करती है। जब चपाट घर आता है, तो वह चेत को जान से मार देने की राय दे देती है। चेत को जंगल में ले जाकर चपाट वध कर देता है। इधर उसकी छोटी पत्नी उस गहने के व्यापारी के साथ फँस जाती है। व्यापारी नित्य रुपये वसूल करने के बहाने उसके घर आने लगता है।

कुछ दिनों के बाद चपाट की बड़ी पत्नी आती है। वह अपने लड़के को न पाकर उसकी तलाश करने लगती है। मुहल्लेवालों से पता चलता है कि लड़का जंगल में अपने पिता के साथ गया है। बड़ी पत्नी भी जंगल में निकल पड़ती है। बड़ी पत्नी ज्योंही जंगल में पहुँचती है कि उसका मरा हुआ पुत्र उसे दीख पड़ता है। इतने में कोई सिद्ध संत का दर्शन होता है, जो उसके पुत्र को पुनः जीवित कर देता है। दोनों माँ-बेटे प्रसन्न-चित्त गले से गले मिलते हैं और उसी साधु के आश्रम पर जीवन व्यतीत करने लगते हैं।

इधर छोटी पत्नी चपाट को पुनः जंगल में भेजती है। सोचती है कि यदि चपाट जंगल चला जायेगा, तो पुनः वापस नहीं आयेगा। ऐसा कार्य वह सोचकर उसे जंगल भेजती है, जिसकी खोज में उसे सफलता नहीं मिल सके। गीत गानेवाली 'गाछ' तो होती नहीं; अतः वही 'गाछ' जंगल से लाने का आदेश वह कुल्टा अपने पति को देती है। ऐसा बीहड़ प्रश्न लेकर चपाट जंगल में जाता है। जंगल जाने से पूर्व चपाट और उस कुल्टा में जो सम्भाषण होता है, वह प्रेम भरा है—

औरत—पिया गहना दे दऽ बनवाई, बोलावे अइहे हमार भाई;
बाटे बबुई के विदाई नइहरवा में।

गहना पहिनबि हम कवन, बतला दऽ तू जवन
बाटे बबुई के गवन एह सालवा में।

मर्द—गहना खोजे लगलू जानी, बोलत बाड़ बिरही बानी,
कइ भर छहल होई पानी तोहरा घरवा में।
कहत भिखारी नाई, भजिल रामनाम मनलाई;
गहना इहे देखइहऽ जाई बापहरवा में।

औरत—हम हई नइहर के सवखीन, कपड़ा पांहरिला रंगीन,
चोली कीनि दीहऽ सटल बदनवां में।
सोचि के ससुरा के रहन, रोवत बाड़ी भितरे मन,
सूरति देखि-देखि कर दरपनवां में।

मर्द—एही से बानी हम चुप, अइसन पवले बाड़ रूप;
लइसन लउकत नइखे खोजला से जहनवां में।
तबहीं कीनलीं नीमन सारी, पेन्हऽ कइके मन उजियारी;
नेयी लागल बाटे दाम तहवनवां में।

औरत—अबहीं भइलीं ना लरकोर, कहां अकिल हेराइल तोर;
तहवन सारी कीनिहऽ रेशम के दोकानवां में।
ललसा लागल बाटे मोर, अँगुठी कीन दऽ पोरे पोर;
कतना दाम लागी चानी के कँगनवां में।

मर्द—खोजे लगलू झकाझक, बन खातिर चकाचक;
अगिया लवलेवाड़ धरती असमनवां में।
कहत भिखारी नाई भजिल राम नाम चित लाई
हरदम रटत रहऽ कवनो बहनवां में।

कजली के प्रथम में यहाँ औरत और मर्द के बीच सवाल-जवाब हुआ है। औरत खूबसूरत है, खूबसूरत है। मगर पुश्तैली है। मर्द उसके वश में है। वह निरा मूर्ख 'चपाट' है और गरीब है। उसकी माँगों की पूर्ति जब उससे नहीं हो पाती, तो वह खूबसूरत औरत उसके हाथ से निकलकर उसी गहने के व्यापारी के हाथ में चली जाती है। वह उसके शौक-शृंगार की पूर्ति करने लगता है। इधर चपाट जब 'गानेवाली गाछ' की खोज में जंगल जाता है, तो उसकी बड़ी पत्नी और पुत्र चेत से भेंट होती है। वहीं सिद्ध संत भी उसे मिलते हैं। संत की कृपा से चपाट अपनी पुरानी दुनिया में प्रवेश करता है, जहाँ उसे

वास्तविक सुख-शान्ति मिलती है। जब चपाट 'गानेवाली गाछ' की जिज्ञासा करता है, तो संत उसका यथार्थ रहस्योद्घाटन करता है। संत बतलाता है कि 'गाछ' उसके घर में ही है। अतः घर वापस आकर ही गाछ प्राप्त किया जा सकता है। कपड़ा में लोपकर जिस सेठ को उसकी पुश्चली औरत रखती है, उसी को पकड़कर वह गाना सुना करे और सेठ के साथ उस औरत को सदा के लिए बाहर कर दे। अपनी बड़ी औरत और पुत्र चेत के साथ शेष जीवन का निर्वाह करे। चपाट जंगल से वापस आता है—अपनी बड़ी पत्नी तथा पुत्र के साथ। रात का समय हो गया है। उसकी छोटी पत्नी उस गहने देनेवाले सेठ के साथ अकेले घर में आनंद कर रही है। अचानक ये तीनों व्यक्ति घर के दरवाजे पर पहुँचते हैं। चपाट प्रेम का नाटक दिखाते हुए गुहराता है-

कंठ सूखल बाटे पानी पियावि हम, बानी दुआरी अगोर।
बबुआ के माई बिलगो समुझऽ मति, पंर पीरात बाटे मोर।
कोमल बिल में बया नइखे लागत, काहे हो भइलू कठोर।
कहत भिखारी होत कर मन में अब होइबू लरकोर।

दुखवा ससुझऽ हीरा !

मूलतः कहा जाय तो भिखारी रंगकर्मी ही थे। उनकी कलाकारिता लोक-कलाकारिता थी। भोजपुरी जनपद के बीच घटनेवाली घटनाओं का ही चित्र उनके सहज-सुलभ नाटकों में है। उनके एक नाटक का नाम है —'गबर घिचोर बहार'। उस नाटक के मुख्य पात्र हैं—गलीज, गड़बड़ी, गबर-घिचोर और गलीज बहू अर्थात् गबर की माता।

भिखारी के नाटक का मंचन कुछ विशिष्ट ढंग से होता था। उनकी मंडली में रहनेवाले सभी लोग समाजी कहे जाते थे। अतः नाट्य प्रदर्शन में सर्वप्रथम समाजियों द्वारा सम्मिलित (कोरस) गायन होता था, जिससे होनेवाले नाटक का आभास मिल जाता था। 'घिचोर बहार' में समाजी एक स्वर से पहले गाते थे :—

सिरी गनेस पद सीस नवाईं। गबर घिचोरन के गुन गाईं॥

गलीज गन्दगी का नाम है। उसमें मिल गया गड़बड़ करनेवाला गड़बड़ी। कारणतः जो कुछ वहाँ प्रादुर्भूत होता है, वह एक खींचातानी का विषय बन जाता है, जिसे हम भोजपुरी में 'गबर-घिचोर' ही कह सकते हैं

गलीज विवाहोपरान्त परदेश चला जाता है। घर में उसकी स्वागता वधू अकेली बच जाती है। उसका पड़ोसी उसकी पत्नी के साथ गड़बड़ कर देता है, जिससे 'गबर-घिचोर' का आविर्भाव हो जाता है। पन्द्रह वर्षों के पश्चात् गलीज घर लौट आता है। तबतक गबर घिचोर की उम्र तेरह वर्षों की हो जाती है।

गबर घिचोर को लेकर वहाँ एक बखेड़े का सृजन होता है। कहीं गड़बड़ी अपना अधिकार गबर पर जताता है, तो कहीं गलीज अपना आधिपत्य। और माता का जो स्वत्व गबर पर है, सो अलग। अन्ततः पंचायत होती है। सभा में सभी सधे हुए पंच बैठते हैं और प्रतिपक्षी लोग अपनी-अपनी दलील निम्न प्रकार से सुनाते हैं। प्रथम गड़बड़ी अपना बयान सुनाता है :—

राह में पवलीं खाली जाली। खोजत आइल कुचाली॥
रुपया धइलीं लेलीं निकालीं। ले जासु खलिया जाली॥

गड़बड़ी की जीवन-यात्रा में एक खाली जाली मिल जाती है, जिसमें वह रुपये रख देता है—'धीर्य सुजीवनम्'। जब उसके समक्ष जाली लौटने का प्रश्न आता

है ,तो उसके लिए वह तैयार है; मगर, रुपये सहित नहीं। जाली का सम्बन्ध रुपये रखनेवाली थैली से है। 'पतिजीया प्रविशति' के अनुसार पति ही पत्नी द्वारा पुनः पुत्र रूप ग्रहण करता है। नारी ने यदि नर-रत्नों का जन्म दिया है, तो अकेले नहीं पुरुषों के सहवास और सहयोग से। गड़बड़ी के तर्क का खंडन गबर-घिचोर इस प्रकार करता है :—

सुनीं सभासद असल कहीं, झूठ में लागी पाप।
माई बायु छूटि गइले, मिलले जलिया बाप॥

इसके पश्चात् गलीज कहता है—

गाछ लगावल कोहँड़ा के, लतर गइल पछुआर।
फरल फरोसिया के छप्पर पर, से हउ माल हमार॥

'ऊर्ध्वमूलमधः शाखः' के अनुसार तो समस्त सृष्टि ही गुल्म-लता के रूप में परिलक्षित हो रही है। मगर मेरा अभिप्राय उस Hanging graden से नहीं है। एक समय परमेश्वरी ने कुपित होकर समस्त सृष्टि को जड़ बना दिया था। पुरुष हुए पेड़। नारी हुई 'लताएँ'। पुनः ऐसे भी सिद्ध है—'भुज-लता पड़ी सरिताओं की शैलों के गले सनाथ हुए'। तात्पर्य यह कि नारी लता के समान है। कुम्हड़े का बिरवा जिसका है, फल भी उसी का है—चाहे वह फल जहाँ भी फले। अन्त में, गबर की माता अपना तर्क देती है :—

घर में रहे दूध पाँच सेर, केहू जोरन दिहल एक धार।
का पंचाइत होखत बा? घीव साफे भइल हमार॥

पाँच सेर दूध सूचित करता है—पञ्च तत्त्व को और कितना मोहक है यह रूपक! माता दूध, पिता 'जोरन' दही का और पुत्र घी। सचमुच दूध ही घी का मूल है। माता के पास दूध के सिवा और है ही क्या? सचमुच 'आँचल में है दूध'। पुत्र रज और वीर्य का सामंजस्य है। फिर भी, उस पुत्र पर स्वत्व माता का ही है। यहाँ दूध और दही का विषय तो गौण है। मुख्य जो है, वह है मातृ हृदय का हृदय-द्रावक वचन। गबर की माता उसे पंचों के सामने खोल कर रख देती है :—

उदर से, सेटा हउअन हमार।
साँच बात में आँच लगत बा, पूछीं बोला के नाऊ बमार।
पुत्र भइल जौभ स्वाद गइल सब, तनिको ना खइलीं बेकार।
अब आगा प दगा होखत बा, पैरलसि ठग बटवार।
कहत भिखारी तैयार भइल जब, दियला से दूधा के धार॥

पिता निमित्त मात्र होता है। सृष्टि माता करती है। माता की तपस्या का फल है—पुत्र। माता के पास कोई दलील और तर्क नहीं है। उसके पास है प्रत्यक्ष प्रमाण—'पूछीं, बोला के नाऊ चमार'। पुत्र के कल्याणार्थ माता को त्याग देना पड़ता है—जिह्वा का स्वाद। शरीज और गड़बड़ी के लिए क्रमशः ठग और बटमार की उपमा कितनी सच्ची है! इतना ही नहीं। माता पुनः अपने मातृत्व की गरिमा को कातर वाणी में पंचों के सामने पेश करती है—

निव सति गनपति, हरहुँ बेकार मति; चरन के चेरी के इयाद राखऽ अपुआ।
पेटवा भीतर माहीं, गम कुछ रहे नहीं; तबहीं से असरा लगवलीं हो बबुआ।
बनि के तोहार कुली,लालच में गइलीं भूली;नव मास डोअली मोटरिया हो बबुआ।
दिन रात हूल आवे, घर ना आंगन भावे; चलत में गोड़ भहरात रहे बबुआ।
जब होखे लागल पीरा,दुखवा समुझ हीरा;मुखवा से कहत बानी कमती हो बबुआ।
सुनऽ हुलक करिले से, चार दिन पहिले से;मउरी में बांत लागि जात रहे बबुआ।
केहू कहे हउए भूत, केहू कहे हउए पूत; केहू कहे भीतरे मुअल बाटे बबुआ।
केहू कहे मरि जाई, चुरइल धइले बा माई; सड़सा संगहनी के खड़लसि बबुआ।
अब तब के धरी रहे, इहे सभ केहू कहे; चमइनि हाथ लाके कढ़लसि बबुआ।
नया भइल जनम मोर, असहीं ह पैदा तोर, तेलवा लगाइ के अबटलीं हो बबुआ।
सुधि कर भइला के, गुह-मूत कइला के; माइ मति जान हमें धाइ जानऽ बबुआ।
कहत भिखारी नाई, कवन करीं उपाई: मुँहवां के तोहरे दुअरवा हो बबुआ।

मातृत्व की गरिमा के अन्तर्गत है—उसके नौ माह का पुत्र-वहन। नौ मास तक के जीवन में कतिपय प्रकार के परहेज। प्रसव की अपार व्यथा, जिसके अनुमान से ही एक वैरागी कराह उठा है—'प्रसव अति दारुन दुख उपजै'। यह तो एक साधारण-सी बात हुई—सभी माताओं के लिए। मगर यहाँ की परिस्थिति कुछ और भयंकर है—'दिन रात हूल आवे'। चलना-फिरना भी माता के लिए मुश्किल था—'गोड़ भहरात रहे'। चार दिन पूर्व से ही—'मउरी' में दांत लग जाता था। तिस पर नाना प्रकार की किंवदंतियाँ फैल गई थीं 'केहू कहे हउए भूत', 'केहू कहे मुअल बाटे', 'केहू कहे चुरइल धइले बा माई' इत्यादि। पुत्र पैदा होने पर सबर की माता ने 'तेलवा लगा के अबटलीं'। आखिर कितने हीरे हैं, जो 'गुह मूत कइला के' कीमत दे सकते हैं? और सबर के जन्म में तो 'चमइनि हाथ ला के कढ़लसि'। माता का कहीं जोड़ नहीं है, मुकाबला नहीं है। जो लोग 'जननी जन्म भूमिश्च' के मिलान में हैं, वे भ्रम में हैं। वे भी भूल कर रहे हैं, जो कहते हैं—जननी जन्मभूमि सुनियत स्वर्गहु सों प्यारी। 'अनयत सही हैं वे जो कहते हैं—'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि-कुमाता न भवति' अथवा 'माता न कुमाता पुत्र कुपुत्र भले ही'।

माता का अनमोल त्याग ही ममता का रूप धारण कर लेता है। भरत साधु थे, ठीक था। मगर माता कैकेयी ने उनको जन्म दिया था। पालन-पोषण किया था। भरत माता कैकेयी के थे। यही कारण है कि सभा में वह चिल्ला उठती है :—

छीने न मातृ-पद किन्तु भरत का मुझसे रे राम! दुहाई और करूँ क्या तुझसे?

उसे अपने मातृत्व का गर्व था—'मैं रहूँ पेंकिला पशकोश है मेरा'। यद्यपि

कैकेयी जौं लौं जीवत रही।
तौं लौं बातु मातु सों मुँह भरि भरत न भूलि कही।

अस्तु, आइये नाटक के विषय पर। पंच लोग जिरह सुनकर गवर को तीन टुकड़ों में बाँटने की आज्ञा देते हैं। माता हिस्सा लेना स्वीकार नहीं करती। तब दो टुकड़े करने की बात आती है। माता टुकड़े करने पर एतराज करती है। वह गवर को किसी एक ही व्यक्ति को देने के लिए अपनी सम्मति देती है। इस पर पंच लोगों का अन्तिम फैसला होता है कि जिसे पुत्र के लिए दर्द नहीं है, उसका पुत्र नहीं है। पुत्र के प्रति माता को सहानुभूति है। अतः पुत्र माता को मिलना चाहिए। इसी निर्णय के साथ नाटक का पटाक्षेप होता है—

तीन जना में झगरा भइल। गवर घिचोरन के जिव गइल॥
भइल सिकायत जग में भारी। दू गो बाप एक महतारी॥
एह जीवन ले मुअले बेस। सुभ गति दे द सिरी अवधेस॥
देटा माता के संग गइलन। देखि गलिज गड़बड़ी लजइलन॥

पियऊ निसइल !

भिखारी की रचनाओं में समाज के प्रति कल्याण की भावना निहित है। उनके हास्य और व्यंग्य का उद्देश्य यही है कि समाज अपने सामाजिक दोषों को समझे और उससे बचे। अपने परिवेश में होती हुई बुराइयों को भिखारी नित्य देखते थे और देखकर उनके हृदय में पीड़ा होती थी। वे उन सामाजिक बुराइयों को लेकर एक चित्र तैयार करते थे और समाज के सामने नाटक के रूप में पेश करते थे। प्रायः उनके सभी नाटक सामाजिक बुराइयों से पीड़ित होकर ही लिखे गये हैं।

भिखारी मूलतः गरीब वर्ग के ही कलाकार एवं कवि थे। वे गरीबों के प्रतिनिधि भी थे। उनके अभिनय देखनेवाले दर्शक अधिकांशतः गरीब ही थे। गरीबों के प्रति उनके हृदय में सहानुभूति भरी हुई थी। जिस प्रकार उन्हें शौकीन गरीब अप्रिय थे, उसी प्रकार उनके बुरे आचरण से भिखारी के मन में घृणा थी।

कलियुग के आम आचरण की भर्त्सना करने के लिए भिखारी ने 'कलियुग प्रेम' का निर्माण किया था। उस नाटक में संक्षेपतः 'पियऊ निसइल' का चरित्र दिखलाया गया है। कोई एक ऐसा गरीब व्यक्ति है, जो सदा नशा में बदहोश रहा करता है। उसकी धर्मपत्नी और पुत्र दाने-दाने के लिए तरसते रहते हैं और वह समाज-द्रोही नशा में मस्त होकर वेश्या के घर में पड़ा रहता है। यदि उसके आचरण का विरोध उसकी धर्म-पत्नी करती है, तो लेने के देने पड़ जाते हैं। अतः उसकी धर्म-पत्नी रो-रोकर अपना दिन व्यतीत करती है :—

निसा खाके पिया मोर, निसा खाके पिया मोर;
दिहलन कपार फोर, से परल बानी निसइल के पालवा हो लाल।
बेचि के चउकठ कँवारी, बेचि के चउकठ कँवारी;
तन पर के हमरा सारी, सेहिहे में बिगलन मोहरमालवा हो लाल।

× × ×

कतने बिनन से कहल बानी तोहरा से, कइलऽ ना काम हमरो बात, पियऊ निसइल।
बेचि के कमाई पुरुखन के उड़ाई देलऽ; अपने भइलऽ लहंगाधार पियऊ निसइल।
सुई डोरा घर में ना, लुगरी फाटल बाटे; लइका रहत बा उघार, पियऊ निसइल।

× ×

कइलन निरमोही डबल घात।
एक दिन हमरे खातिर नइहर में, साजि के ले गइलन बरात।

ऊ दिन भोर भइल पियऊ का, दारु ताड़ी अब सोहात ।
रात दिन गारी फजिहत में, मारत जूता लात । घात० ॥

यही है औरत की दशा और उसकी उलाहना । पुनः पुत्र यदि बोलता है माता की ओर से, तो वह भी मार-पीट का भाजन बन जाता है । नशा खाने-वाले नशाखोरों के पास ज्ञान तो है नहीं, एकमात्र मार-पीट का सहारा है । वह मार-पीट भी नशाखोर सोच-समझ कर करते हैं । अपने से बलिष्ठ से वे नहीं भिड़ते । भिड़ते हैं कमजोर से । तो पुत्र पूछता है अपने पीटे जाने का कारण—

बाबू कइलीं कवन कसूर । मन कइलऽ बेटा से दूर ॥
बाबू खेललऽ भइसन खेल । दारू में धन देलऽ ढकेल ॥

'दारू' अर्थात् शराब के प्रश्न को लेकर पिता और पुत्र में सम्वाद होता है । पिता कहता है कि मैं नशा खाता हूं, तो शंकर हूं । पुत्र कहता है कि वह प्रह्लाद है—पिता को ठीक करने के लिए । अतः छोटे बालक पर वह नशाखोर झपट पड़ता है और बालक माँ के आँचल में भागकर त्राण पाता है । औरत (सती औरत) निवेदन करती है—

बालक अबुझ पर बूझ कईके माफकर; निपट नदान अनजान पियऊ निसईल अँचरा पसार भीख माँगत बानी सामीजी से;बबुआ के करऽ जीव-दान,पियऊ निसईल

पत्नी के कथन का तनिक भी प्रभाव नशाखोर पति पर नहीं पड़ता । वह अन्त में वहाँ से ऊबकर चल देता है—वेश्या के घर की ओर । उसकी सती पत्नी आँख मूँद कर भगवान के ध्यान में निमग्न हो जाती है—'कहँवा लगवलऽ अतना देरी, ए दयानिधि !'

उस नशाखोर व्यक्ति के दो लड़के हैं । जो सयाना लड़का था, वह बहुत पहले ही घर से भाग चुका था—पिता के कुकृत्यों से तंग आकर । दूसरा लड़का अभी बालक ही है । वह माता के संरक्षण में जीवन व्यतीत कर रहा है । नशाखोर के पुत्र और पत्नी की दशा बराबर दयनीय ही दृष्टिगोचर हो रही है—

नइखे मीलत भरपेट अन । पियऊ बेंचलन निशा में धन ॥
अड़का बेटा कहां दो गइलन । एह से बेसी नतीजा भइलन ॥
छोटका के बा लड़िकापन । अब हम करीं कवन यतन ॥
कवना घर से खरची आई । कइसे लड़िका पोसल जाई ॥

भिखारी के समय में कुछ इसी प्रकार की सामाजिक परिस्थितियाँ थीं और बेढंगा माहौल था । हिन्दू सती के सामने कैसा गंभीर प्रश्न उपस्थित है—'कइसे लड़िका पोसल जाई ?' निर्दयी गृहपति यदि शराबी है, तो उसके परिवार के दुःखों का क्या ठिकाना ?

अन्त में सिंहल की पत्नी तय करती है—वेश्या के पास जाकर विनय करने का। वह अपने बालक के साथ वेश्या के पास पहुँचती है और उससे करुणा-भरे शब्दों में प्रार्थना करती है। वेश्या उसकी प्रार्थना को टाल देती है और उसे फटकार देती है। पुनः वह सती रोने-बिलखने लगती है—

राखऽ सरन के पानी ए बहिनी !
अन वस्तर बिनु माई बेटा के, बीतत बा बहुत हलकानी।
प्राननाथ के तनि समुझा दऽ, हो जा तूँ अटल भवानी।
कहत भिखारी जियब हम जबले, रहब चरन लपटानी।

ऐसी प्रार्थना सुनकर वेश्या कठोरतापूर्वक उत्तर देती है—

तें का बने अइले ? हमार दासी; ए चोटट्ही !
सोझा से दूर होखू चोटट्ही बेसरमी, ना त छोड़ाईब बबमासी।
हाथ में ना गोड़ में टकहा लिलार में, मने मने मारत बाड़े हाँसी।

भोजपुरी कहावत का ऐसा प्रयोग शायद ही कोई रचयिता कर सका होगा, जिसे सहज भाव से भिखारी ने कह दिया है—'हाथ में ना गोड़ में, टकहा लिलार में।' इसका साधारणतः अर्थ यह होता है कि न हाथ में पहनने के लिए कोई आभूषण है, न गोड़ में पहनने के लिए; है तो बस, लिलार में एक टके की टिकुली या सिंदूर। पर वेश्या इस सिंदूर के महत्व को क्या जाने ? सती एवं साध्वी स्त्रियों के लिए उसके अहिवात का प्रतीक टिकुली अथवा सिंदूर ही सभी आभूषणों से ऊपर है। उस सती का अबोध शिशु भी अपना अर्ज वेश्या के सामने मधुर शब्दों में पेश करता है—

बहुते करबि सेवकाई, ए माई !
रात दिन तोहरे चरन में, हरदम रहबि लवलाई।
मार पीट गारी चाहे फजीहत, करबू तूँ कवनो सजाई।
बाबू के कहि के समुझा द, तोहरे बा सब प्रभुताई।
कहत भिखारी कसूर माफ कर, सिरलीं सरन में आई।

उस अबोध और अल्हड़ बालक की दशा पर भी वेश्या को दया नहीं आती। वह उस बालक की अर्जी को फाड़ देती है; प्रत्युत, कहती है—

तें का हमार करबे सेवकाई, रे फुहरा !
हमरा के जहाँ तहाँ पाछा में रात दिन, कहेले रखेलिन तोर माई।
खुदे तोर बाप अपमान कइ डिहलसि, भागु मुँहें करिखा पोताई।
कुरता धोती नीमन मिली, माई के निहोरा कऽ, करो कवनो दोसर सगाई।
कहत भिखारी तोरा हाथ के जो पानी पियबि तुरते उबान्त हो जाई।

सामाजिक कुरीतियों के आलोचक तो भिखारी हैं ही; मगर, सांस्कृतिक जीवन का भी उन्हें सदा ख्याल है। जब वे चारों ओर से निराश्रित होते हैं, तो उन्हें भारतीय परम्परा की भगवती अथवा भगवान याद हो आते हैं। पुत्र जब वेश्या से उपेक्षित होता है, तो अनायास पुकार उठता है—

आहि बाहि बउरहऊ भोला। बाबू के लागल बिष के गोला॥
आहि काली कलकत्ते वाली। मइया एहि जून परलीं खाली॥
महाधार में परल बा जीव। धींचिके सुखला कई ब सिव॥
अबकी बेरा लगा द पार। हरिहरनाथ जी सुनऽ पुकार॥
गोहाटी परबत के बासी। काटऽ कमछा गला के फांसी॥
बेबी अबहीं दरसन बे दऽ। पुख बलिदर पल में खेदऽ॥

भगवान अथवा भगवती की प्रार्थना के पश्चात् शीघ्र ही उन दोनों—माता और पुत्र के भाग्य का उदय होता है। अहीर के बड़े लड़के का नाम शंकर था, जो पिता के हुकूमें से तंग आकर कलकत्ता चला गया था। वह काफी सयाना हो चुका था। वहाँ उसने धन भी अर्जन कर लिये थे। अचानक उसके मन में घर की याद आई और वह कलकत्ता से आ गया। उसे पाकर उसका छोटा भाई और उसकी माता परम प्रसन्न हो उठीं। बस इसी प्रसन्नता में भिखारी प्रस्तुत नाटक का अन्त करते हैं।

लहुरी ननदिया, ए सँइया !

ननद और भौजाई का गीला सम्बन्ध अत्यधिक लचकीला (चकचकदार) होता है। देवर-भौजाई के सम्बन्ध में कुछ झीना पर्दा भी रह जाता है; पर, ननद भौजाई के सम्बन्ध में किसी प्रकार का आवरण रहता ही नहीं। उन दोनों में बहुत कुछ का साम्य होता है, स्थिति-विशेष और परिस्थिति-विशेष का भी। वय और सेक्स का साम्य होता है। परस्पर कुछ भी कहने सुनने का स्वाद होता है। ननद-भौजाई में किसी के मुख पर मर्यादा का ताला नहीं बन्द रहता, बोलने की छूट रहती है। साहचर्य के दिनों में स्थिति-साम्य के कारण उनमें अभिन्नता रहती है।

पत्नी अपने पति की बहन को पाकर तीनों लोक का आनन्द भूल जाती है और बहन तो भाई की पत्नी पर बिकी ही रहती है। यही कारण है कि जहाँ पर ननद और भौजाई बैठी रहती हैं, वहाँ पर जाने का तीसरा कोई दुस्साहस नहीं करता। सास पतोह का एकत्र होना, कभी-कभी कलह का विषय बन जाता है। ननद-भौजाई में उस तरह का कलह कदापि सम्भव नहीं। होती है, प्यार भरी मृदुल गाली, हमजोलियाँ और आन बान की प्यारी तकरार। अतः ननद-भौजाई की लड़ाई-भिड़ाई में शुद्ध प्यार और दुलार भरा हुआ है। स्नेह-प्रेम को लेकर वे परस्पर नित्य ही भिड़ती रहती हैं और एक-दूसरे को पछाड़ने का यत्न करती रहती हैं। उनकी परस्पर की छेड़खानी सहृदयों को लुभा लेती है, बरबस मोह लेती हैं। उनका पारस्परिक वार्तालाप सब कुछ भुला देता है। प्रेम के भाव-पथ में लीन कर लेता है। उनके हृदय में जो पारस्परिक भाव भरे होते हैं, उनके आकलन का शब्दों में सामर्थ्य नहीं। ननद के प्रति भौजाई के हृदय में कितना स्थान है और भौजाई के प्रति ननद की कितनी उदारता है, क्या कोई इसका अन्दाज लगा सकता है ?

नारी-हृदय की परख का प्रश्न बड़ा ही पेचीदा है। पुरुष उस तह में प्रवेश तो कर ही नहीं सकता, उस तह का स्पर्श तक करना उसकी शक्ति से बाहर की बात है; मगर, भिखारी है कि हृदयतः नारी बनकर नारी-हृदय में पैठने की क्षमता रखते हैं। तभी नारी हृदय में जाकर वे उसे खोलने में समर्थ हो सके हैं। भिखारी विषय का वास्तविक स्वरूप ग्रहण करना जानते हैं। सच्चे कवि की

आकुलता और कवि-कर्म का ज्ञान उनमें पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ है। भौजाई के हृदय में प्रवेश कर भिखारी ननद के प्रति निम्न भाव व्यक्त करते हैं—

ए संइया ! पीपर तर भुताह बाटे नदिया।
संग ले सहेली साथ, फजिरे में मीसे माथ; गइल बाड़ी लहुरी ननदिया।
अकिल गेयान भइल, उमिर सयान भइल; एही साल में होखे के बा सदिया।
आजु ले रसोई पानी, हमहीं करत बानीं; कबहूँ ना पिसली हरदिया।
कहत भिखारी नाईं, देखऽ जल्दी से जाईं; ना त पाछे होई सरदिया।

सचमुच, पीपल का पेड़ ही खतरेनाक होता है। पीपल के पेड़ के नीचे जाते ही मन घरा उठता है। ऐसे खतरेनाक स्थान में भौजाई का अपने पति को सावधान करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। गाँवों में नदियों के किनारे 'माथ-मीसने' लड़कियाँ विशेषत: जाती हैं। मिट्टी द्वारा वे घंटों अपने केशों को साफ करती हैं। यहाँ भी यही बात है। भौजाई की लहुरी ननद 'फजिरे' में अपनी सहेलियों के साथ 'माथ मीसने' गई है; लेकिन, लौटी नहीं। अत: भौजाई का चित्त उसके लिए सशंकित हो उठा है। एक शंका तो यह है कि वह नदी ही 'भुताह' है-भूत प्रेतों का यहाँ अड्डा है। दूसरी शंका है कि उसकी 'उमिर सयान भइल' अर्थात् बिहारी का 'ताफ्ता रंग' आ गया—'छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यो जोबन अंग।' इस खतरेनाक उम्र के अनेक भूत-प्रेत हैं।

भौजाई सोचती है कि उम्र के लिहाज से बुद्धि बढ़नी चाहिए न कि और 'अकिल गेयान गइल'; जबकि 'एही साल में होखे के बा सदिया।' वस्तुत: खतरेनाक उम्र का खतरेनाक स्थान भौजाई को परेशान किये हुए है। आखिर यह परेशानी है क्यों ? स्पष्ट है भौजाई की ममता है। कौशल्या ने 'दीप बाति नहि टारन कहेऊ' और भौजाई ने प्यार के मारे उसे खर टकसाने को भी कभी नहीं कहा। वह स्वयं स्वीकार करती है—'आजु ले रसोई पानी हमहीं करत बानी।' एक छोटा-सा काम है—हल्दी पीस देना। मगर भौजाई की कृपा और स्नेह से—'कबहूँ ना पिसली हरदिया'। 'ना त पाछे होई सरदिया' की आशंका तो गजब की है। इस आशंका के आते भौजाई शील तोड़कर पति को आज्ञा प्रदान करती है—'देखऽ जल्दी से जाईं।' ननद की भूल को भौजाई पति से कहती है और पति की भूल को वह ननद से कहती है। यह अच्छी आँखमिचौनी है। भौजाई एक दिन ननद के पास अपने पति पर 'कम्प्लेन' करती है—

काँचे नींनी विहलन जगाईं, ननद लोहार भइया।
आँख भरमत रहे भवन में, सेज पर धइलन कलइया।

नइहर जाइबि त जल्दी ना आइबि, साध लेबि दइया।
चोरी के बात हम तोहरा से कहलीं, लगइहऽ मति लइया।

ननद की शिकायत उसके भाई से और पति की शिकायत उसकी बहन से। भौजाई का मौज इसी में है। उसके दोनों हाथ में लड्डू हैं। 'ना त पाछे होई सरदिया' की जितनी आशंका रहती है, उतनी ही आशंका होती है—'लगइहऽ मति लइया'। ये छोटी-छोटी आशंकाएँ ही प्रेम के प्राण स्वरूप हैं।

प्रेम सर्वदा निर्दोष है। वह अपना दोष दूसरों के सिर मढ़ देता है। पाव पाकर नहीं कहने लायक बात भी कह दी जाती है। फिर भी, मन भयभीत रहता है। मालूम होता है प्रेम भय और आशंका को जान बूझकर सिर चढ़ाता है। पति के 'काँचि नीनी' जगाने की बात को किसी से कहना नहीं चाहिए था; मगर, भौजाई अपनी ननद से उस गोपनीय बात को भी कह देती है। ननद और भौजाई का कितना अभिन्न सम्बन्ध है—कहते नहीं बनता। मनुष्य बिना कहे, शायद जी नहीं सकता। वह जो कुछ भी करता है, उसे किसी को सुनाना चाहता है। लगता है जैसे पति और पत्नी के बीच में ननद का स्थान सेतु का है। भौजाई सीधे पति से न कहकर ननद से अपनी साध सुनाती है—

ननद अपना भइया से बनवा दऽ हो हमरा नाक के झुलनियां
तीन पाट के साड़ी मँगा दऽ, रंगल झूला बयगनियां।
छोट झूला के छ आंगुर तोड़ी, लागल पोढ़ पर कमनियां।
बनरहार, हलका, बननी, झमक, पांव में के पयजनियां।
बालू, बरहबूटा, जोसन, ककना, पर पछआ के धनियां।

ऐसा न समझें कि ननद ही बराबर भौजाई की सेवा करती है। भौजाई भी अपनी ननद की बहुमूल्य सेवा करती है। वह उसे वह 'अकिल गेयान' देती है, जो उसकी माता नहीं दे सकती। भौजाई ननद की अध्यापिका है, जिसकी शिक्षा लेकर ननद ससुराल के जीवन-पथ पर अग्रसर होती है। ससुराल के जीवन से तंग आकर ननद अपनी भौजाई से कहती है—

भउजी सुनिलऽ मोरी बात, नइहे नइहर रहल जात।
जाके करबि बन में भजन हो भउजिया।
सेज मिरिगा के छाल, ओढ़नी भेंड़ी के बाल।
जंगल में मंगल उडाईबि हो भउजिया।
साड़ी गेरुआ के रंग, मलि के भभूत अंग।
गालवा में तुलसी के मालवा भउजिया।
छूरा से छिला के केस, धरबि योगिनि के भेस।
सोभी मोर हाथ में समिरनी हो भउजिया।

नइहर से छूटल लाग, खाइबि कन्द मूल साग ।
अनवा बउरावत बाटे मनवा भउजिया ।
'पिउ पिउ' करबि सोर, मन लागत बाटे मोर ।
बायाँ कर में सोभी कमण्डलवा भउजिया ।
बानी पर धेयान दीहन, जंगल में खोजि लिहन ।
दयानिधि चरन के चेरी के भउजिया ।
फागुन से महीना चारी, पुई चौरासी जारी ।
ताहि बीचे हरिगुन गाइबि हो भउजिया ।
रितु बरसात भर, कर हर हर हर ।
गउरी गनेस के पूजबि हम भउजिया ।
कहत भिखारी दास, कातिक से चार मास ।
जाड़ा में लेइबि जल-सयन हो भउजिया ।

सन्यास के स्वांग पर तनिक ध्यान दीजिए। 'बन में भजन' की चाह और 'जंगल में मंगल' मनाने की कामना दोनों ही धन्य हैं। राम के सहवास में सीता ने कहा है–'जंगल में भी मंगल है'। उर्मिला के लिये 'बना भवन भी कानन ही' और तब उसने कहा—'कबल ही अब तो सम्बल है'। 'सेज इधर मूस चर्म है' और 'साड़ी गेरुए का रंग' है। अंग में विभूति है, गले में तुलसी की माला, जैसे मीरा की तस्वीर झलक जाती है। कंद-मूल का आहार तो 'अमिय अहार' है। अन्न का आहार सदोष है, जिससे पितामह भीष्म की बुद्धि भ्रष्ट भी हो गई थी। ऊपर से पंचाग्नि, पूजन, जलशयन और नाम की रट लेकिन, भौजाई का उत्तर बेजोड़ है—

सुनलीं बयान तोर हुलसल करेज मोर, अइसन नेयान कहवाँ पवलू ननदिया।
घर में के छोड़ि कंत बाहर होखे अईबू संत, केहु नाहीं कही तोहि भल ए ननदिया।
छोड़ि के सकल भरम, धरऽ पतिबरत धरम भूत बनि जइबू भभूत से ननदिया।
जबतक रहे देह, पति पद में राखऽ नेह, मालवा से होइबू ना निहालवा ननदिया।
अनुसुइयाजी के बानी, सुनलीं रामजी के रानी, पोथी में कहात बा कहानी ए ननदिया।
पोथे तोहरा सुझे लागी, बन से मन भागी, जालवा बुझाई मृगछलवा ननदिया।
हिया बीचे सोचऽ नीके, कीरति सुलोचनी के, सुनि गुनि सुनि तरसत, ए ननदिया।
अईसन करनी के छोड़ि, चातक लेखा मुँह ओड़ि, करबू तू पीउ पिउ रटना ननदिया।
ईहे हमार हउए तप, घर हो में बोल सत, रखिहन पत परमातमा ननदिया।
चढ़ल बाटे जुवानी, ठंढा कईके रहऽ मन, पतरे से होईबू धनधन हो ननदिया।
कहत भिखारी नाई, करबि जल्दी उपाई, जेहि विधि सत बनि जाई ए ननदिया।

भीतरे बइठल नाथ कमाव s !

भिखारी के उदार हृदय में किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं पाई जाती। छोटे-बड़े की भावना नहीं है। वे मानवता के पुजारी थे, उनके हृदय में सद्गुणों का आदर था, तथापि जिस जाति में उनका जन्म हुआ था, उस जाति के प्रति कुछ कहने के लिये वे मालायित हो उठे थे। 'नाई बहार' की अवतारणा इसी का परिणाम है। नाई जाति को गाँवों में 'नाऊ' भी कहते हैं। बंगाल में ब्राह्मण को ठाकुर कहा जाता है। उत्तरप्रदेश में क्षत्रिय ठाकुर कहे जाते हैं; और बिहार में नाई भी ठाकुर कहे जाते हैं; मगर, 'ठाकुर' पदवी यदि पक्की होती, तो भिखारी 'नाई बहार' नहीं लिखकर 'ठाकुर बहार' लिखते। अतः भिखारी की जाति नाऊ, नाई या हजाम ही कही जायेगी। इस जाति का सम्पर्क व्यावहारिक हिन्दू-जीवन में प्रारम्भ से ही है। भिखारी कहते हैं—

सुनिलऽ पंचों बात हमार। नरक से नाऊ करसु उधार।
जनमते लइकी में सुधि कइलन। नव मास के पातक खइलन।
चारे आना में भागल छूत। लेदलन खुद नाऊ के पूत।
दू आना बबुई के भइल। तुरते छूत खुस होइ गइल।

लड़का या लड़की के जन्म होने पर एक प्रकार की 'छूत' लगती है। उस छूत से मुक्त करानेवाला नाई ही है। नाई उस छूत को दो-चार आने पैसों में मुंडन के द्वारा उतार देता है। लड़का होने पर उसे चार आने पैसे मिलते थे और लड़की होने पर दो आने। जन्मोपरान्त उपनयन संस्कार की बारी आती है। भिखारी कहते हैं—

चाचा जहिया रहे जनेव। ओहिजो मुंडन के बा भेव।

पहले मुंडन-संस्कार हो जाता है, तभी उपनयन का संस्कार प्रारम्भ होता है। भिखारी के कहने का मतलब है कि हिन्दू जाति का कोई भी मांगलिक कार्य बिना नाई के नहीं पूरा होता। विवाह-शादी में नाई की आवश्यकता पग-पग पर है। भिखारी नाई की उपयोगिता और आवश्यकता बताते हैं—

साबी के दिन पहुँचल राजा। तिलके में से बाजल बाजा॥
बाकत छूटल गोड़ के छाल। जजमनिका हऽ नीज महाल॥
रात बोलाहट दिन के नेवता। काम के कइक तरह बा सेवता॥

तेहु में मइले मन अवसात। छत्तीस गंडा सहलन बात ॥
कंटिया खातिर गइलन धावल। तेकर हक कोंहार लोग पावल ॥
पतल घटल त धावल अइहऽ। बारी ना होखस त लेलहुँ अइहऽ ॥
मालो ना लेके अइलन फूल। एहमें बा नाऊ के भूल ॥
देरी भइल ना आइल ढोल। ठाकुर तूँ हउअऽ बकलोल ॥
दही अछत मीठा के धइलऽ? गौरि गनेस स्थापन कइलऽ?
दीहऽ बोलाहट नगर भर। छूटे ना पावे एको घर ॥
देखिहऽ बीहने रोकिह मत। नेवता के लिखात बा खत ॥
× × ×
कचा सेर भरि सतुआ नून। बेसी न पइब एको बून ॥
× × ×
गवलन दुःख भिखारी नाई। गुनि के गुनि लीजे सब भाई ॥

विवाह के सभी कार्यों पर नाई की पूरी जिम्मेदारी होनी चाहिए। यदि कोई कार्य बिगड़ रहा है, तो उसके लिए जिम्मेदार नाई है। विवाह के 'काम के कइक तरह बा भेवता'—एक काम नहीं अनेक काम। तिलक के दिन से ही यह परेशानी शुरू हो जाती है। मालिक नहीं जानता। जानता है नाई। मालिक को सिर्फ कैह देना है, नाई को उसे करना है। ऊपर से नाई 'छत्तीस गंडा सहलन बात'। दौड़कर उसे कुम्हार के घर जाना है, बारी के घर जाना है। यदि फूल नहीं आया, तो माली के घर भी जाना है। पूजा की सारी व्यवस्था करना, घर-घर बुलाहट देना और दूर-दूर के सम्बन्धियों के पास निमंत्रण ले जाना भी है—केवल सेर भर सत्तू लेकर। इन समस्त कार्यों का निरीक्षण कर भिखारी दुःखी होकर अपनी जाति के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हैं। कहते हैं कि इस जाति का जैसा काम है, उसके अनुसार उसकी मजदूरी नहीं मिल रही है। वे जाति को उभारते नहीं हैं, वे बगावत नहीं फरवाना चाहते। चाहते हैं कि नाई की कीमत लगाई जाय और उसका महत्व समझा जाय। तदनुसार उसकी मजदूरी दी जाय। वे सभी भाइयों के सामने अपना अर्ज पेश करते हैं और उनका ध्यान नाई के कार्य की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं। भिखारी का कहना है कि नाई की कमाई क्या यही होनी चाहिए :—

गेहुँ तेलहन रेंडी तोरी। इ ना मिली माल हऽ कोरी ॥
मटर बूट खेसारी जव। जेकर पसेरी छव ॥
कोदो मसुरिया रहर भाई। मिलत बा सहता अन कमाई ॥
× × ×
ले जा जवन हो सहता अन। एही में बँगला काट फयसन ॥
× × ×
नेवतवनीं मिलल दु पाई। सब कुछ दस आना हो जाई ॥

नाई की वर्ष भर की मजदूरी यही हुई--कुछ अन्न। यह अन्न भी मोटा और सस्ते भाव का। कुछ तिलक-विवाह में नगद पैसे। इस मजदूरी में नाई साल भर हजामत बनाता है। शरीर की सेवा करता है। नाई को स्त्री घर की स्त्रियों की खिदमत अलग करती है। जीवन में जब-जब कोई विकट समस्या आती है, नाई बिना बुलाये आकर उसमें हाथ बँटा लेता है। यथा—

लड़िका मुअल बाप बाचा। एहू में हम का कहीं हो चाचा॥
बबुआ नइखे बिध के काज। बेटी ना बरबा लागी बाज॥
खोजऽ नाऊ कमाओ माय। अइलन कई दीअलन रघुनाथ॥
नोंह कटाल मारऽ गोता। गंगा, ईसर चाहे हो गोता॥
बबुआ बिते ब तसिको रात। सारा देखि के कहहु भात॥
आधा छुतिका नाई पइहन। एही में पूरा मगन हो जइहन॥

तात्पर्य यह कि नाई दुख-सुख में हाथ बँटाकर हमें भार-मुक्त कर देता है। सुख-दुख के सभी अवसरों पर वह परेशानी को अपने सिर पर ले लेता है। विवाह-पूजा-पाठ में दौड़-धूप का काम है, नाई कर देता है। मरण के शोक में वह उपस्थित होकर दुःख को बाँट लेता है और थोड़ी ही कमाई में उस दुःख से नाई मुक्त कर देता है। दुःख के दिनों में नाई अधिक मनोयोग से तत्पर होकर हमारे काम में आता है। भिखारी लिखते हैं—

जबना दिन गउहत्या लागल। त जजमान हो गइलन पागल॥
धन के लोभी गोंड कहावस। से ना ओह घरी देह छुआवस॥
पुरोहित पातक लाके गइलन। गंगा नेवला पर ना गइलन॥
फरके से देखलबलन भाय। पहिले जाके माथ कमाय॥
नोंह कटा ल कर असनान। धर गौरी गनेस के ध्यान॥
कह जे ई हत्या के खेल? कहब, जे कइलन भिखारी खेल?
खेल कहाई सिले ना पाई, हँसी में बगरी बात।
कहे भिखारी अपना मन में, समझसु नाऊ जात॥

'समझसु नाऊ जात' के द्वारा भिखारी अपनी जाति में जागृति ले आते हैं। ऐसी आवाज बुलंद करते हैं, जिससे हजाम जाति अपने कर्मों का वास्तविक पारिश्रमिक जनता से पा सके। वे सहज ही जाति में चेतना ले आते हैं—

लियला पर केहु हजन करावल। दाम लेल केहु असहीं धावल
अजमनिका के नाऊ नाय। रखलन इजत के सब भाय।
अधतारा के रुवर धार। बोतर जात ना पावे पार।
पातक में नाऊ अइलन काम। छुधा कारन सीताराम।

छआछूत खेदत पल माहीं। नरक नहरनी राखत नाहीं।
कईंची कवच नाई दल बीरा। पातक समर चढ़त रनधीरा।
सिली सिल्पकार में नागर। सीतल करत बधार उजागर।
धार बार के मार गिरावे। करि सिंगार भ्रम भूत भगावे।
जंगल केस देस चहुँ फेरा। जहँ तहँ 'लोख' करत बहु डेरा।
गिरत खून 'ढिल' भागल जाई। टिक परवत में रहत लुकाई।
बजत चमरुआ बाज चमवटी। एह बिधि उतरल भार भखवटी।

भिखारी के कथन में हकीकत यह है कि ब्राह्मण का नेग नाऊ के परिश्रम पर अवलम्बित है। किसी प्रकार के पाप-ताप का हरण करनेवाला हजाम ही है। भिखारी का कथन है कि हजम करने के कारण ही वह 'हजाम' है। पाप सरिता को पार करने के लिए नाऊ 'नाव' है। बिहारी के दोहे के लिए 'नावक के तीर' उपमा दी गई है और यहाँ तो नाऊ के समस्त औजार ही भिखारी उपस्थित करते हैं। सम्भवतः नाई पेशा के विकट कार्यों से उबकर ही भिखारी जाति-कर्म से विमुख हुए थे। निम्नांकित पद से इसका स्पष्टीकरण होता है—

छूरा छूटल नाच का जर से।
माथ कमाईं दौरी दोलहटा, छूटे ना कइंची कर से।
जब खाये के माँगी मजूरी, झगरा होता नारी नर से॥
जहाँ रेल के सुबहित रहता, भारा ना माँगी डर से।
धूप ताप में चिठी नेवती, गिरे पसेना गतर से।
तीस बरिस के जब हो गइलीं, रात दिन लगलीं तरसे।
कहीं से गति कबीत कहीं से, लागल अपने बरसे॥
जनम साल मोर नवे पाँच के, बिनय करीं हरिहर से।*
कहे भिखारी पार उतारऽ मोहि के भवसागर से॥

फिर नाई-जाति के विकट कुछ कर्मों का विवरण देखिए। भिखारी कहते हैं—

जइसे मुरदा घाटे गइल। छौर करम के खोजी भइल।
काम के पाछा धूनलन हफन। पवलन मुरदा पर के कफन॥
कुरी कनउजिया कहलाई। करऽ कृपा चमवटिया भाई॥
छौर करम के घर बनावऽ। भीतरे बइठल माथ कमावऽ॥

* 'जनम साल मोर नवे पाँच' का मतलब फसली सन् १२९५ साल में जन्म-काल हुआ। —लेखक

कहेले अलले बात भिखारी !

भिखारी वर्णाश्रम धर्म की सुरक्षा चाहनेवाले मर्यादावादी कवि थे। उनपर पिछले लेखे के प्राचीन कवियों की छाप है। विशेषतः भिखारी तुलसी से प्रभावित थे। समाज के अत्याचार-अनाचार भिखारी को मान्य नहीं। सामाजिक उच्छृङ्खलाओं को कदापि बर्दाश्त करनेवाले कवि भिखारी नहीं। सामाजिक दोषों और उसमें घुसी हुई बुराइयों से भिखारी को चिढ़ थी। समाज में किसी प्रकार की अव्यवस्था देखकर भिखारी झट उबल पड़ते थे। ऐसे उनका सबके प्रति समादर का भाव है। किसी प्रकार का भेदभाव उनके हृदय में नहीं था। भेदभाव-रहित अटल प्रेम को कायम रखने के लिये वे सामाजिक कुरीतियों को हटाने का प्रयास करते थे। उनकी लेखनी, समाज के विभिन्न विषयों पर सर्वत्र एक समान चलती रही है। गोकशी से चिढ़कर, व्याकुल होकर भिखारी गौ का महत्त्व बताते हैं—

'जब मतारी के दूध छूटेला तब अन्न के जरूरत होला। अन्न होला कहाँ से? गाइ के, बैल के जोतला से। बोअला से। पटवला से। एकरा बाद वस्तर के जरूरत लागेला। वस्तर मिलेला कहाँ से? कपास होला काइसे? बैल के उपजवला से। फेनु साढ़ी के जरूरत लागेला। ओह में गाइ के गोबर से आँगन लिपाला। गाइ के गोबर के गउरी-गनेस बनेलन। ओह में उनकर पूजा होला। बेमार परला पर बैद, हकीम, डाक्टर लोग गाइ के दूध बतावेला पिये के। अवर रहला पर गाइ के घीव में पुस्टई बनेला। ओकरा से धानु पुष्ट होला। तब बस बढ़ेला। अन्त में कहेला लोग कि बाबा ना बचिहन। तब गाइ-बाछी छुआ के दान कइल जाला बैतरनी पार उतारे खातिर।'

राम नाम मनि उर में धरिहऽ। गऊ गरीब साधु से डरिहऽ॥
मात पिता गुरु बिप्र के सेवऽ। एह से ऊपर ना दूसर देवऽ॥
काम क्रोध मद लोभ के छोड़। नाहीं त परी जेहल में गोड़॥
अइसन भइल जगत में रीत। गावत बानी देखलके गीत॥
सहता चानी महंगा गाँजा। लबटल बा अनपुछला के भाँजा॥
जई गहूम के एके भाव। लबटल बा अनपुछला के दाव॥

प्रथम ज्ञान रूपी प्रकाश के लिए 'राम नाम मणिदीप धर जीह देहरी द्वार।' दूसरे डरना चाहिए- 'गुरु सरीव साधु से।' तीसरे इन सब में पूज्य बुद्धि होनी चाहिए—'माता पिता गुरु विप्र' में। 'काम क्रोध मद लोभ' पर यथासाध्य कन्ट्रोल होना चाहिए। एकदम जड़ से छोड़ना तो हो ही नहीं सकता। शायद किसी का आज तक हुआ भी नहीं है। पहुंचे हुए महर्षिगण तथा त्रिदेव तक इसमें हिलोरें खा रहे हैं। हां, भिखारी अत्यधिक दुःखी है—वर्तमान समय की कुरीति से। जिस वस्तु की पूछ होनी चाहिए, जो कीमती है उसकी पूछ नहीं है और जिसकी कीमत कुछ नहीं, कम है उसी की मांग है और मर्यादा है। 'भांजा' का अर्थ है-बारी। उसी अर्थ में 'दाव' का भी प्रयोग हुआ है। भिखारी समाज के सच्चे अभिभावक थे, शुभैषी थे और हितैषी थे। जिस प्रकार गाय का महत्त्व है, उसी प्रकार भिखारी कहते हैं कि माता का भी स्थान उच्चतम है—

हिन्दू मुसलमान सब कोई। मइया से सब पैदा होई॥
मन चित लाई के सुनि लइ बानी। एह में कुछुओ नइखे हानी॥
मइया आस बेटा के कइली। नीमन चीज बबुआ के धइली॥
बबुआ बनि गइलन होसियार। लउंडन से कइलन सरोकार॥
बबुआ इलत बढ़वलन भारी। बाप के देलें लाखन गारी॥
लहर अइसन माई के बोलसु। मेहरी के पाछे से डोलसु॥

× × ×

अइसन गिरल बजर के ताल। माई के भइलन बुलरुआ काल॥

× × ×

तकला पर लउकत ना हीत। अइसन जग में भइल अनीत॥

भिखारी की शिकायत वर्तमान युग की चलती हुई 'अनीतियों' के प्रति है। जिस माता से हमारा जन्म होता है, उस माता के प्रति हमारे बहुत-से कर्त्तव्य हैं। अगर कुछ भी नहीं हो सके, तो कम-से-कम माता के प्रति उपेक्षा और निरादर का भाव तो होना ही नहीं चाहिए। यहां भिखारी के माता के कर्त्तव्य की एक मामूली बानगी; एक साधारण दृष्टान्त उपस्थित किया गया है। 'नीमन चीज बबुआ के धइली'—शबरी की तरह माता अपने पुत्र के लिए अच्छी-अच्छी चीजों को जुगाकर रखती है। वह न स्वयं खाती है, न दूसरों को प्रदान करती है। चीज रखी-की-रखी भले बिगड़ जाय, मगर माता जब तक उसका पुत्र न आ जाय, निकालती नहीं। वह पत्थर की छाती बनाकर अपने पुत्र के सारे कुकर्त्तव्यों का सहन करती है। माता के कलेजे की बलिहारी है। जो पुत्र माता की उपेक्षा करता है, उसके लिए भिखारी लिखते हैं—

'अइसे कुत्ती किसी सुत जाये, अथवा बराबर छानी पर चढ़ि के दूध पिपिलेस औह समय केहू भाला लेके जाय, तबहूं कुत्ती नेटी पर चढ़ि जाये के डरवा राखले । का हे ? बच्चा के दाहे । प्रान के मोल ना बुझे । काहे बच्चा का दाहे । जब कुत्ती का हूँ खेलि जाले, तब गड़िका जा के करिअका, ललका धारा आहि देला अठगहा बिसहा मिनके । माठा भाग जिया के 'कुल कुल' चाल करेला । ऊ पिल्ला पाछा लागल अइरेला कि इहे हमार असल स्वामी हउवन । देखीं कि औह पिल्ला के मतारी ओर परि गइली । हूँड़िया कुई के पाछा घर-घर मतारी ढोंढ़ खोजि फिरत बाड़ी । औह पिल्ला के नाम परल बा 'लड़िया' । पोगनिहार कहेला कि हमार कुत्ता एह जन बड़ा सिकारी बाड़ल बा । औह लड़िया सिकरिया अइला के मतारी के कुछ फल ना मिलल । लड़ले के बेरा भोमन तरक करेके हाल जानसु, मोकदमा लड़ेके हाल जानसु, पहलवानी करेके हाल जानसु, रुपया कमाये के हाल जानसु अइरी मतारी छाप के सेवा करेके हाल ना जानसु तब बुझे के चाहीं कि ऊ आदमी के बच्चा न हउवे, कुत्ती के पिल्ला हो गइले ।'

भिखारी द्वारा प्रस्तुत भोजपुरी गद्य-शैली पद्य से कहीं अधिक कीमती होती थी । गद्य में उनके प्रवचन, भाषण जब चलते थे, तो बीच में किसी का साहस नहीं पड़ता था कि कानाफूसी भी कर सके । वे अपनी ललित गद्य-शैली में मन्त्र-मुग्ध से कर लेते थे । उस समय बड़ी-बड़ी लठैत और हथियार से लुक छिपी के बक्त में नहीं आनेवाले भोजपुरी जवान तटस्थ होकर ध्यानपूर्वक भिखारी का भाषण सुनते थे । यह उनकी पैनी मधुर वाणी का प्रताप था ।

सब बाबू के नाऊँ माथ, अबरे रहलीं कई पुस्त से ।
× × × ×
बूढ़ ताला के ई लीं निकाल बिना इजाजत बलती भर के ।
× × × ×
हम ना आ कइली परचार आस पुराई बाबू भइया ।
मदद लेके थोरे थोर बने बुढ़शाला गांवे में ।

भावी पीढ़ी का ख्याल कर भिखारी ने अन्तिम दिनों के लिए बुढ़शाला खोलने का प्रोग्राम बनाया था । उनका कहना था कि जिस प्रकार गोशाला खुल गई, उसी तरह बुढ़शाला भी खुलनी चाहिए, जहाँ अन्तिम दिनों में लोगों को सुख-शान्ति मिल सके । अपने गाँव-जवार के समक्ष उन्होंने अपने इस प्रस्ताव को रखा भी ।

यह सही है कि भिखारी जो कुछ गद्य-पद्य लिखते थे, उसे स्टेज पर नाटक के रूप में प्रदर्शित करते थे । उनकी समस्त रचनाएँ दृश्य-काव्य के अन्तर्गत आती हैं ।

नाटक करने-कराने में वे स्वयं पारंगत थे। रंगकर्म पर उनका सर्वाधिकार सुरक्षित था। वह थे—नाटक के संचालक, व्यवस्थापक और सूत्रधार। अपनी ही लिखी कृतियों की शिक्षा-दीक्षा स्वयं वे ही अपनी मंडली में देते थे। संगीत-नृत्य, गाना-बजाना, कला-कौशल, साज-बाज, शोभा-शृंगार आदि सारी बातों की पूर्णत: जानकारी उन्हें थी। यही कारण था कि दुनिया उन्हें एक नाच मंडली के प्रवर्त्तक के रूप में ही जानती थी। सच तो यह है कि विशेषत: आरा, बलिया और छपरा के क्षेत्र में भिखारी के मुकाबले में न नाच हुआ है, न है और न भविष्य में होगा ही। 'भिखारी का नाच आया है'—सुनकर सामने का रखा हुआ खाना छोड़कर चल देनेवाले दर्शकों को लाखों की संख्या में देखा गया है। क्या बराबरी करेगा सिनेमा का कोई भी चित्र, भिखारी के नाच के सामने? और क्या भीड़ एकत्र होगी कोई तानसेन या बैजूबावरा के संगीत पर, जब स्वयं भिखारी उतर जाते थे—स्टेज पर।

कुछ विचारकों का कथन है कि भिखारी ने (नाच मंडली के अन्दर) 'टिकुली चोली सारी' पहनाकर नवयुवकों को हिजड़े का पाठ पढ़ाया है, जिसे बहुसंख्यक लोग बिगड़ते गये हैं। एतदर्थ, भिखारी ने समाज को गिराया है। शुक्लजी ने लिखा है कि तुलसीदास ने राम नाम का महत्त्व इतना आँक दिया है कि उससे आलसी अपाहिजों की संख्या बढ़ गई है। उपदेश से लाभ उठाने की भी क्षमता होनी चाहिए। रामलीला या रासलीला में नारी का पार्ट करनेवाला कोई मूढ़ नाटक के बाद भी अपने को नारी के ही रूप में समझे, तो रासलीला या रामलीला का क्या कसूर। चित्रपट देखकर कोई घर-बार छोड़ दे, तो उस कमजोर व्यक्ति को घर की चहारदिवारी के अन्दर संदूक में बन्द रहना चाहिए। जिन भिखारी को दुराचरण से घृणा थी, वे व्यभिचार को प्रश्रय कैसे दे सकते थे। वे तो अपने साथ अभिनय करनेवाले सहकर्मियों की भी फजीहत करके छोड़ते थे, लाख-लाख बार धिक्कारते थे :—

बेटा हो पेन्हलेऽ सारी। दाम कमा के भइल भारी॥
चाहे खिस में दे बऽ गारी। कहेले असले बात भिखारी॥

●

अँकरी नहिं सिलत बा एहि बेरी!

भिखारी ने अपने आलोचकों का अपने जीवन में तनिक भी ख्याल नहीं किया। कौन उन्हें किस उपाधि से विभूषित कर रहा है—इससे उनके मन-चित्त पर जरा-सा भी आघात नहीं पहुँचा। न निन्दा से ही वे घबड़ाये, न प्रशंसा से ही वे फूले। वे जीवन के सही पथ पर बराबर अग्रसर होते रहे। उन्हें जो कुछ कहना था बिना संकोच के कहते गये, हर विषय, हर पहलू और हर वर्ग पर। अभिव्यक्ति का बयान करने में उन्होंने कोई कसर उठा नहीं रखी। आज के युग में कहाँ क्या हो रहा है, भिखारी ने लिखा नहीं था। समाज का निर्माता व्यक्ति ही है। भिखारी की दृष्टि में कलिकाल गुह-गुह में अपना फेरा लगा रहा है—अपना अवदान देने के लिये। प्रत्येक व्यक्ति उस अवदान को ग्रहण कर रहा है। परिणाम यह निकल रहा है—

बेटा बाप से कइलन जूध। माई के तेजलन पीके बूध॥
धनि धनि कलिजुग दानी। भइलन दुनिया भर मस्तानी॥
पतोहिया सासु के ऊपर रानी। बढ़िके करे लागा तानी॥
लुगरी देखे फारल पुरानी। जोम से मुँह चमकावे जानी॥
अपने पहिरे सोना चानी। सिर पर चढ़ि गइल सैतानी॥
हरदम बोले लहजे बानी। पहिरे रंगल कपड़ा धानी॥

× × ×

कहे भिखारी मुँहजबानी। अबहूं से चेतऽ मन अभिमानी॥
जेह दिन सुतबऽ चदर तानी। खटिया पहुँची घाट मसानी॥
करबऽ चीता पर सिरहानी। बुत जाई बेटा के नाम निसानी॥
छोड़ दऽ लसाकुटन के धानी। पहुँचऽ असले मूक ठेकानी॥

आज का यही समाज है। घर-घर में कलह और विद्रोह है। सास और बहू में खींचातानी है। पति से पत्नी की नहीं पटती। बाप से बेटा नित्य लड़ता रहता है। परिवार का प्रत्येक सदस्य भिड़ने के लिए उतारू दीखता है। पुरुष और स्त्री दोनों इसके शिकार हो रहे हैं। भिखारी आदेश देते हैं 'छोड़ दऽ लसाकुटन के धानी'। 'लसाकुटन के धानी' का अर्थ 'गीधवा मिसान' अर्थात् आपस में

दुलख कर मरना। भिखारी की दृष्टि में सारे कलेह की जड़ है युग। मातापिता की आज्ञा युग में ही लिखी रहती है। इस आज्ञा का अधिकार यह कि 'बेटा बाप से कइले जूध' और पतोहिया सासु के डारे दाँती'। भिखारी भारत के उन नौनिहालों, युग के निर्माता Future Generation को सावधान करते हैं, जो मात्र Eat, Drink and Be merry में ही मस्त हैं—

बेटा-बेटी भूखे सुतसु, मारै बासु भइलन सूर।
मेहर के मन बर बरतर, लइले बदुआ मना में घूर॥
हवअन हिन्दू मुसलमाना। अबसे कौन जाति खानदाना॥

× × ×

आलस ताड़ी के दुकाना। पाकल लबनी में पकाना॥
घूंटा-घूंटी सेजलसि आना। हड़ड़ा गिरली तक हुंडि जाना॥
गन्हाना मंहगा अस उतराना। छाने कपड़ा देके पुराना॥
ओमरी अँड़ठल ना मसलाना। फाटि के बिहुंदी गइल सिर आना॥
केहुके छतरीस में ना आना। मुंहि ओंठि ओकि दलिधाना॥
बिछना नीमक मरिचा खाना। घूंट में फेंके मुंह पर दाना॥
मछली कलिया के बखाना। करिके बारबार पछताना॥
ऊपर लबनी के उड़ाना। नीचे मुंह चुए अस धाना॥
कबहूँ खसली ओठ ठेक जाना। जेह से पासी किरस देखाना॥
भिखारी निपढ़ नाउ नदाना। कहेले देखल के दरमाना॥

× × ×

पहिले बेद पुरान कुराना। पुरखन काटी कपर सताना॥
मत के मनिक न मरम मिटाना। दिल से दूर करऽ अभिमाना॥
मसिलऽ राधा कृष्ण भगवाना। चाहे अलख धुरुख निरबाना॥
हुए एक रहऽ राम रहिमाना। पहुँचऽ असले मूल ठेकाना॥

'भिखारी निपढ़ नाउ नदाना' और की तरह गरज कर इनसे दरमहा ताड़ी पीनेवालों को धिक्कारते हैं, कोसते हैं और खिल्ली उड़ाते हैं। ताड़ी पीनेवालों का एक निम्नतर वर्ग पाया जाता है, जिसके बारे में वास्तविक जीवन का चित्र भिखारी यहाँ उपस्थित करते हैं। इस वर्ग में हिन्दू और मुसलमान दोनों दिल खोलकर मिलते हैं। भिखारी उन दोनों के सच्चे अभिभावक हैं। उनके कल्याणार्थ भिखारी के हृदय में बराबर स्थान है। अतः वे हिन्दू और मुसलमान दोनों की रक्षा चाहते हैं और चाहते हैं कि दोनों अपने-अपने रास्ते में नहीं रहकर पहुँचे 'असले मूल ठेकाना'। प्रधान चीज तो जिन्दगी का है आचरण। यदि आचरण ही शुद्ध नहीं है तो 'काशी

कवर पगान' में बना रखा हुआ है। वह तो मन का भ्रम मिटाने के लिए एक मामूली-सा ख्याल है। अधिकांशतः व्यक्ति (गरीबों के पुत्र) ऐसे हैं, जो देखा-देखी संगीन बन गये हैं। गरीब के पुत्रों के लिए भिखारी उनके भाग्य पर खीझते हैं और व्यथित हृदय से लिखते हैं—

करब फूटल दुखिया के, किन्तु अइलन सबलीन।
काम धंधा कछुओ नइखे, मालुम में लम्पलीन॥
बइठी भाय में, पड़ी हाथ में, रंडी लाय में, लथड़ल नाथ में।

घर में नाई उपास, ओह भइली विदास, करब दाइ कविलास, परी गर्दन में फांस।
हुई भुखले डाइ डूर, जइबा हाकिम का हुजूर, लेखा मांगिहन अकूर,
तब करब घलइबऽ लूर।
मुंह में उड़े खाली धूर, रोअबऽ धरि धरि के धूर, कहल मानिलऽ फूर।
हुई भिखारी ठाकुर, घर हऽ खास कुतुबपुर, जहवां होला झंझवा धूर।
बहुत गांछ बा बबूर, बहेली गंगाजी मशहूर, करेबाली पाप दूर।

ध्यान दीजिये उस पावन रम्य भूमि पर जहां पर 'बहेली गंगाजी मशहूर'। ऐसी गंगा जो पाप-ताप को विनष्ट करनेवाली है। गंगा के आस-पास 'बहुत गाछ बा बबूर' तथा 'जहवां होला झंझवा धूर'। यह है खास कुतुबपुर का कोमल वातावरण भिखारी के निवास-स्थान का दृश्य। भिखारी को पुनर्जन्म में खूब ही विश्वास है। उन्हें अच्छी तरह ज्ञात है कि इस जन्म की करनी का फल अवश्य मिलेगा। अतः वे उस 'हाकिम' के लेखा से औरों की अगाह करते हैं—'तब करब घलइबऽ लूर?' यदि इस 'हाकिम' के सामने एक न चली, तो परिणाम यही होगा 'परी गर्दन में फांस' और 'लथड़ल नाथ में'। 'नाथ' एक प्रकार की रस्सी का बंधन है जिससे बैलों के नाक में छेद करके नाथ दिया जाता है जिससे वे काबू में आ जाते हैं। ऐसे मूलधन (नर जानवर) को बरबाद करनेवाले और कविलास करनेवाले केवल पुरुष ही नहीं स्त्रियाँ भी हैं। भिखारी समाज के उभय पक्ष पर ध्यान रखते हैं। आधुनिक स्त्रियों के प्रति वे लिखते हैं—

नीमन नीमन चीज खा के मइली लहालोट।
छव अँगुरी के तोई चढ़ गली सबहूं शूला छोट॥
पैन्हिके चलेली उतान, केहुनी ऊपर से परमान;
आधा पेट ले डेकान, झूमक झूले दुनों कान;

मन में बहुत बा गुमान, भिखारी कइलन बखान;
देखि के बानी हैरान, काम में बहुते अलसान;
देखीं झगड़ा में सान, नीके सूनीं देके कान;
आँख में सुरमा के बान, इहे चलल बा चलान;
ताके भहुँआ के तान, आनकेहु से मुसुकान;
कइली पति के अपमान, सासु से गीधवामिसान;
मुँह में जोड़ा खिली पान, बईल बाटे डगिलदान;
खासऽ रंडी के समान, कहल माने ना नदान; कहऽ वाह वाह !

'एँड़ी से पखान' फोरनेवाली औरतों की यह चर्चा है, जिनके विषय में लोग परस्पर कहते हैं—'कातऽ नीमन हऽ खनदान'। ऐसी खानदानी औरतें जब घर में आती हैं,तो काम-काज की तो बात ही छोड़िए 'मुँह में जोड़ा खिली पान' दबाकर पलंग से नीचे नहीं उतरतीं, कुछ बोलने पर लेने के देने पड़ जाते हैं। 'सासु से गीधवामिसान' हो जाता है और पतिदेव भी अपमानित हो जाते हैं। सारा साज-शृंगार करके दूसरों से प्रेम से बोलती हैं—मुस्कुराकर बोलती हैं। अब लीजिये कुछ घूमने-फिरनेवाली औरतों के नमूने—

सोना चानी देह में भरल, बीता भर के झुला।
छव गज के साड़ी पहिरली, तबहूँ गतर खुला॥

आधा पेट बा उघार, लउकल ढोढ़ी सुधार;
मानों भरल बा भंडार, भइल कुल के उधार;
कइली बड़का उपकार, भिखारी कहे बारंबार;
देखि के भइली भिखार, जियरा जरत बा हमार;
नइखे तनिको अखतियार, दिहतीं देस से निकार;
अतना अरज बा सरकार, केहु नइखे कहनिहार;
एहिसे बगदत बा संसार, चाहीं करके विचार;
रास्ता चलसु ना मनमार, जइसे फानेली पगार;
छउकेली घोड़ा के सवार, लाके तेल खुशबुदार;
पाछा केस देली झार, बुँदा सोभत बा लिलार;
झुमक झुले बचवादार, साफे मुँह बा उघार;
जइसे सजल बा बजार, परल गुंडन के सुतार।

यदि आप मेले-बाजारों में गये होंगे, तो उक्त प्रकार की औरतें आपको अवश्य मिली होंगी। ये 'पगार' छलांगने वाली औरतें इस प्रकार रास्ते में छुछाल (छउकेली) मारती हैं, जिनसे घुड़सवार भी मात हैं। इनका स्वरूप देखिये 'मतर खुला', 'अधा पेट बा उघार', जिससे 'दोंढ़ी सुधार' दिखाई पड़ रहा है। खुशबूदार तेल सिर में और 'लाख बूंदा' लिलार में। अनायास साज-बाज देखकर गुंडों को प्रोत्साहन मिल जाता है और भिखारी भिखार बन जाते हैं। भिखारी अपनी प्राचीन बातों को याद करते हैं और वर्तमान युग देखते हैं। यथा—

खोंटि परेह बने मटरा कर, लिट्टी पिठा जब मटर केरी।
भाव खुलासा अनाज बिकात किनाता रुपया के दस पसेरी।
कोइन में पकवान छने घीव कांचा के सेरन से चारि सेरी।
अति आरत होके भिखारी कहे अँकरी नहि मिलत बा एहि बेरी॥

टिकुली चोली सारी में।

जिसमें नाट्य की प्रधानता हो, वही है दृश्य काव्य। संस्कृत आचार्यों ने इसका नाम 'रूपक' दिया है। स्वांग द्वारा किसी का रूप ग्रहण करना ही 'रूपक' है। किसी के सात्विक भावों का प्रदर्शन ही 'नाटक' है। संस्कृत की 'नट' धातु से 'नाटक' शब्द सम्पन्न होता है। यथा—'नाट्यमिति च नट अवस्यदनेः किंचिच्चलनार्थं त्वात्सात्विक बाहुल्यम्।'

बाल्यावस्था से ही मानव नकल करना सीखता है। अतः जब तक नकल करने की प्रवृत्ति नाट्य का रूप ग्रहण नहीं करती, रूपक का प्रादुर्भाव कदापि नहीं होता। यदि सारतः देखा जाय तो रूपक के मूल में नृत्य और संगीत ही है; लेकिन, उसके सुविकास के प्रधान साधन हैं महाकाव्य या गीतकाव्य (Lyrics).

यूनान के एल्युसिस में सावन तुला के अवसर पर एक महोत्सव हुआ; जिसकी प्रधान पात्री डेमिटर देवी की पुजारिन बनी थी। चीन के मन्दिरों में ऐसे महोत्सव बराबर मनाये जाते थे। बर्मा और जापान भी ऐसे रूपकों और महोत्सवों से अपरिचित नहीं थे। भारत में अनादि काल से नृत्य-गीत के साथ स्वांग निकालने की प्रथा चली आ रही है। पूर्वजों के जीवन की ज्वलन्त घटनाओं का नाट्य प्रदर्शित करना कालान्तर से प्रतिष्ठित है। इसके उत्कृष्ट प्रमाण हैं—राम लीला तथा कृष्ण लीला।

किंवदन्ति है कि हजरत दाउद भी ईसा मसीह के समक्ष नाचे थे। इधर जावा, जापान आदि देशों में नृत्य के अन्तर्गत कुछ कथोपकथन भी होते थे। अभिनय के अवसर पर पात्रगण विविध प्रकार के चेहरे लगाकर अपना-अपना स्वांग धारण करते थे। नृत्यों से उत्पन्न 'रूपक' को जापानी भाषा में 'ना' कहते हैं। पेरू, बोलिविया और ब्रेजिल में तरह-तरह के रूपक खूब ही हुआ करते हैं। जंगली एस्किमों तो प्रायः प्रति वर्ष विभिन्न प्रकार के नाटक किया करते हैं। कम्बोडिया की रंगशाला का नाम 'रंगरम' है। सरमा-पणिस, यम-यमी, पुरुरवा-उर्वशी के गीतों में सम्वादों की भरमार है। इन प्रमाणों से ज्ञात होता है कि प्रथम प्रथम भारत में ही रूपक का प्रारम्भ हुआ था। विदेश के विचारक जैसे—मेकडानल, कीथ, मैक्समूलर, पिराल, लेवी प्रभृत का भी ऐसा ही मत है।

इतना तो निर्विवाद है कि पाणिनि से कई सहस्र वर्ष पूर्व भारत में रूपकों का प्रचार-प्रसार हो चुका था। नाट्यशास्त्र के आचार्यों के दो नाम क्रमशः

शिलालिप और कृशाश्व पाणिनि के व्याकरण में मिलते हैं। भद्रबाहु स्वामी ने अपने कल्प सूत्र में नाटकों की विशद चर्चा की है। हरिवंश पुराण में आया है कि ब्रजनाभ के नगर में 'कौबेररम्भाभिसार' नाटक खेला गया था। उसमें प्रद्युम्न ने नलकूबर का, शूर ने रावण का, साम्ब ने विदूषक का, गद ने पारिपार्श्व का और मनोवती ने रम्भा का रूप धारण किया था, जिसे देख ब्रजनाभ आदि दानव मस्ती में झूम रहे थे। भरत मुनि ने नाट्य की सामाजिक उपयोगिता बताते हुए यहाँ तक कह डाला है—'इस सम्पूर्ण संसार के भावों का अनुकीर्तन ही नाट्य है।'

संस्कृत और हिन्दी के प्रायः सभी नाटकों में प्रथम सूत्रधार का ही प्रवेश होता है। सूत्रधार ही रंगशाला का प्रतिष्ठापक और व्यवस्थापक होता है। सूत्रधार का कार्य होता है कि सर्वप्रथम मंगलाचरण, नाटक का नाम, कर्त्ता तथा विषय आदि का परिचय दर्शकों को भली-भाँति करा दे।

आगे चलकर नाटकों का उत्कर्ष छाया नाटकों के रूप में हुआ। परिणामतः सुभट का 'दूतांगद,' भवभूति का 'महावीर चरित', राजशेखर का 'बाल रामायण' तथा जयदेव के 'प्रसन्न राघव' की अवतारणा हुई। ज्ञात काल की दृष्टि से कालिदास का प्रथम नाटक 'मालविकाग्निमि[illegible] 'अभिज्ञान शकुन्तलम्' का तो जोड़ ही नहीं है। उधर एलिजबेथ के समय में शेक्सपीयर के नाटकों ने अप्रतिम ख्याति तथा लोकप्रियता प्राप्त की। हिन्दी में भारतेन्दु नाटक के जन्मदाता के रूप में सदा धुरिकीर्त्तनीय रहेंगे, चिरस्मरणीय रहेंगे। साहित्यिक दृष्टि से यदि मूल्यांकन किया जाय, तो प्रसाद के नाटकों की कीमत नहीं लगाई जा सकती। मगर खेद है कि उनका कोई भी नाटक मंचोपयोगी नहीं हो सका।

भोजपुरी भाषा के नाटककार भिखारी ने अपनी अगहनीय पीड़ा को, अपने गहन गम्भीर भावों को दुनिया के सामने मंच पर लोकभाषा में अभिनय दिखा-दिखा कर खेलने भी लगे। लोगों ने देखा-भोजपुरी के प्राण, सफल सूत्रधार, सफल अभिनेता अथवा सफल रंगकर्मी को।*

भिखारी ने नाट्यशास्त्र का अध्ययन नहीं किया था। उन्हें स्थायी या संचारी भावों की संख्या भी नहीं विदित थी। परकीया या स्वकीया का भेद-विभेद भी उन्होंने नहीं पढ़ा था। मगर मंच पर वे परकीया या स्वकीया को उत्कृष्ट रूप में पेश करते थे। उनके हृदय से भाव, विभाव तथा अनुभाव फूटकर दर्शकों के कोमल तन्तुओं को आर्द्र कर देते थे। तात्पर्य यह कि नाट्यशास्त्र का व्यावहारिक ज्ञान भिखारी के पास था।

---

*श्री श्रीमन्त जी ने भिखारी के नाटकों पर गंभीर विवेचन तथा व्यवस्थित प्रकाशन की माँग की है। आशा है, शीघ्र ही उसकी पूर्ति की जायेगी।—लेखक

नृत्य, गीत और संगीत की रसभरी, मदमाती, झमझमती हुई तस्वीर लेकर भिखारी दुनिया के सामने सर्वप्रथम आये थे। कोई ग्रंथकार या महाकवि बनकर नहीं। हाँ, यह बात दूसरी हुई कि जब-जब उनके हृदय में वेदना जागी, तो उसे उन्होंने लिपिबद्ध कर लिया। समाज और उनके जीवन के संघर्ष ही नाटक बनते गये। सॉ के शब्दों में—'Every drama must present conflict. No conflict, no drama.'

भिखारी के नाटकों की छोटी-बड़ी दर्जनों पुस्तिकाएँ हैं और वे सभी एक से बढ़कर एक बेहतर हैं। कहना मुश्किल है कि उनका कौन-सा नाटक कितना अच्छा है।

अपनी पुस्तिकाओं में भिखारी ने पद्य भाग को लिखना अनिवार्य समझा था; गद्य-भाग को नहीं। इसमें उनका मतलब यही था कि पद्य-भाग विस्मृत हो सकता था और गद्य-भाग तो नित्य ही गढ़ा जा सकता था। कलाकारों और अभिनेताओं को पद्य-भाग कण्ठस्थ कराना पड़ता था। अतः यह भाग लिख लिया गया था। गद्य-भाग नित्य नवीन रच लेने में उनके सभी अभिनेता अभ्यस्त और पारंगत थे। अतः गद्य भाग अलिखित रह गया और वह उनके जीवन के साथ ही विसर्जित हो गया।

तो भिखारी के विषय में बराबर यही कहा जायेगा कि उनके नाटक लिखावट में संक्षिप्त और खिलावट में प्रदीप्त होते थे। भिखारी की शोभा मंच पर होती थी। वे मंच के बादशाह थे। स्वांग के क्षेत्र में उतरकर वे किसी भी विषय का जीता-जागता रूप खड़ा कर देते थे। अभिनय में प्राण भर देते थे। जिन्होंने मात्र उनकी पुस्तिकाओं का ही अवलोकन किया है, वे नाटककार भिखारी को पूरा-पूरा नहीं जानते; जानते हैं वे, जिन्होंने (भिखारी की जीवितावस्था में) उनके नाटकों को मंच पर देखा है। पुस्तिकाओं में यदि भिखारी पचास प्रतिशत हैं, तो सौ प्रतिशत थे अपने मंच पर। उनके नाट्यकला की यह खूबी थी कि मंच पर आते ही चारों तरफ सन्नाटा छा जाता था। गोली से भी नहीं दहलनेवाली दबंग जनता कान खोल कर भिखारी का भाषण सुनती थी। क्या मजाल कि भिखारी के मंच पर होते किसी के मुँह से कोई आवाज निकल सके। भिखारी विभूति थे। उनमें अप्रतिम प्रतिभा थी। वे जो कुछ गुरुजनों से सीखते थे, कण्ठस्थ कर लेते थे। इस प्रकार कुछ अनुभव की बातें, जिन्दगी की मार्मिक अनुभूतियों को वे नाटक के रूप में लिख लेते थे और फिर उसका समाज में प्रदर्शन भी करते थे।

मनोरंजन के लिए भिखारी ने अपने सभी नाटकों में विदूषक की व्यवस्था की थी। विदूषक के आ जाने से नाटक की गम्भीर यात्रा भी सरलतापूर्वक कट जाती थी। कोई भी कारुणिक प्रसंग बोझिल नहीं होने पाता था। श्रोता या दर्शक सब कुछ हँसते-खेलते हुए बर्दाश्त कर लेते थे। भिखारी के नाटकों में अनेकानेक खूबियाँ थीं

जिन्हें कलम की राह नहीं उतारा जा सकता। देखनेवाली चीज किताबों में पढ़ी नहीं जा सकती।

हास्य-रस के उद्रेक करनेवाले उनके दो नाटक तो भूलते ही नहीं—एक 'बेटी वियोग', दूसरा 'विधवा विलाप'। दोनों का प्रसंग अत्यन्त कारुणिक है। मगर दोनों नाटकों में दुल्हे एक-दूसरे से बढ़कर हँसी पैदा करनेवाले हैं। उनका जैसा स्वरूप है, उसका चित्रण शब्दों का विषय नहीं। कवि लिखता है कि 'रचलन रूप भगवान दुलहा के'। उन दुल्हों को देखकर हँसी के मारे लोग लोट-पोट हो जाते थे। मरणासन्न अवस्था है और इसी अवस्था में शादी होती है—'बूढ़ वर कनिया जवान'। 'बेटी वियोग' का दुल्हा घर आकर कुछ दिन नरक वास करता है; मगर, 'विधवा विलाप' वाला दुल्हा घर पहुँचते ही स्वर्ग सिधार जाता है। भिखारी सूत्रधार के रूप में उस समय व्याख्यान देते थे—'हमरा मन में ई मालूम होता जे बाल वृद्ध विआह विश्वासघात हु। जे आदमी चार पइसा के तरकारी कीने जाला तेकरा के समुझावे के परेला कि चतुर आदमी से किनवइ हउ। ना त ऽ तू ठगा जइबऽ। चार पइसा के सउदा में ठगइला के फिकिर बा। जे लड़की के पति खरीदाये जात बा ओह लड़की से ना कहल जाइ कि बाबूजी हमार वर नीमन खोजिहऽ। त, एह अनबोलता के सउदा जो जबून खरीदल जाई, त बड़ा अधरम बा। चार चीज जोगावे के चाहीं—'इजत, एकबाल, अकीन आ एहवात। एहवात अइसन चीज हउ, जे खेत में ना मिले। दुआर पर, मकान में भी ना मिले। सिन्होरा में रहेला। सिन्होरा खोलला पर भी ना मिले। कागज के पुड़िया में 'सेनुर रहेला'।

भिखारी अपने नाटकों मे विवाह के अवसर पर स्वयं विवाह करानेवाले पंडित का अभिनय करते थे। सफेद मिरजई और धोती पहनते थे। सिर पर सफेद पगड़ी बाँधते थे। ललाट में चन्दन और गले में माला होती थी। एक हाथ में कमण्डल तथा दूसरे में छड़ी लेते थे। इस प्रकार पंडित का पूरा स्वाँग बनाकर राम और सीता की वंशावली का वर्णन सुनाते थे। उस समय मंडप का दृश्य देदीप्यमान हो उठता था—

कलसा के ऊपर चउमुख दीहल बा बार हे।
पंडित जी करत बाड़े बेद के उचार हे॥

नाटकों के बीच में भिखारी के मार्मिक उपदेश भी चलते रहते थे। सभी नाटकों में भिखारी अपना भी कोई-न-कोई अभिनय अवश्य लेते थे। भिखारी अपनी मंडली में मलिक जी के नाम से विख्यात थे। वैसे तो सभी प्रकार का अभिनय वे स्वयं कर सकते थे; मगर, जिन्हें तालिम देकर उन्होंने प्रवीण बना दिया था, उनकी

बराबर कदर करते थे। भिखारी मानव-कमजोरियों को पहचानते थे। अतः उनसे बचते रहने के लिए वे बराबर सचेष्ट रहते थे। उनके साथ उनके अनेक सहयोगी अभिनेता थे। वे उन सभी का हृदय से कल्याण चाहते थे। वे ऐसा नहीं चाहते थे कि उनकी मंडली का कोई भी व्यक्ति दुनिया के निगाह में गिर जाय। कहते हैं कि भिखारी के मंच पर से यदि उनका कोई भी गायक या नाचनेवाला उतर कर लोभ-वश पैसा लेने के लिए आगे बढ़ जाता था, तो भिखारी उसे अपनी मंडली से बाहर कर देते थे। ऐसे ही लोगों को वे फटकारते भी थे—

बेटा होके पेन्हलऽ सारी। दाम कमा के भइलऽ भारी॥
छिनी भगवऽ टूटी गरोह। एकर तनिको नइखे मोह॥
लोहरे खातिर बानि कहत। भइल अहुत बिन जवरे रहत॥

अब से भिखारी ने नाट्य प्रारम्भ किया था, तब से कतिपय लोगों ने तालिम लेकर अपना गिरोह बना लिया; मगर, कोई भिखारी नहीं बन सका। भिखारी भोजपुरी के गौरव थे। उन्होंने दिल खोलकर अपने को लुटाया। जिज्ञासु चाहें, तो पायेंगे उनमें ढेर-का-ढेर रत्न।

भिखारी के जीवन-काल में ही उन्हें बहुतों से सराहना मिली थी और बहुतों से निन्दा। भिखारी स्वस्थ-चित्त होकर स्तुति और निन्दा दोनों को सुनते रहे। अपने मंच से वे दोनों पक्षों को घोषित भी करते रहे—

केहू जपत बा 'दरसन कइली पाप गइल धोवसारी में'।
केहू जपत बा—'लोग फँसवलसि हिकुली चोली सारी में'॥

सदा भिखारी रहसु भिखार !

भोजपुरी पर भिखारी का पूर्णतः अधिकार था। भोजपुरी के वे पंडित थे। उनकी साधारण भाषा में भी भोजपुरी की खूबियाँ भरी हुई हैं। उन खूबियों को कहीं प्रयत्न द्वारा खोजना नहीं है। उनकी भाषा की कोई भी पंक्ति ले लीजिये, वह साफ-सुथरी मँजी हुई है। उनकी भाषा की पहुँच 'चुहानी' से लेकर 'कचहरी' तक है। भोजपुरी के कोमल, भाव-प्रवण एवं 'टकसाली' शब्द हैं, वे सभी भिखारी के चिर परिचित शब्द हैं। शब्दों का भाण्डार उनका अगाध था। उनका समुचित प्रयोग भी वे जानते थे। भिखारी में भाषा की दुरूहता नहीं है। परिश्रम द्वारा कुछ लिखना, भिखारी नहीं जानते। वे जो कुछ लिखते थे, सच्चा और स्वाभाविक होता था। उनकी कविताओं को पढ़ते समय एक धारा-सी बँध जाती है। उसमें कहीं रुकावट नहीं मिलती। सर्वत्र अजस्र रस प्रवाहित होते नजर आता है।

खिसि में बोलत बाड़ु जानी, राखऽ पगरी के पानी,

चानी भइल बाटे महँगा लगनवाँ में।

× × ×

खोजे लगलू झकाझक, बने खातिर चकाचक,

आगि लवले बाड़ु धरती असमनवाँ में।

भिखारी में भाषा का माधुर्य है। चलती और मुहावरेदार भाषा प्रस्तुत करना भिखारी की जैसे शैली है। 'राखऽ पगरी के पानी' मुहावरे का अर्थ होगा 'इज्जत रखना'। 'झकाझक' और 'चकाचक' भोजपुरी के टकसाली शब्द हैं, जिनका अर्थ होगा क्रमशः 'लहरदार' और 'चमकदार'। उर्दू-फारसी तथा आवश्यक अंग्रेजी शब्दों का भी यथासाध्य उनकी भाषा में प्रयोग हुआ है। ऐसे शब्द उतने ही हैं, जिनका परहेज नहीं किया जा सकता। हाँ, संस्कृत शब्दों का पुट देकर भिखारी अपनी भोजपुरी को चमका देते हैं। वे संस्कृत शब्द भोजपुरी पर भार-स्वरूप नहीं होते। यथा—

(१) कर त्रिशूल बसहा पर संकर,
डमरू बाजत बाटे डम डम डम डम।
मुख में पान न भांग चबावत,
बसन बिराजत बा चम चम चम चम॥

(२) मिथिला पति के लाग अतिशय पवनवा,
समीप सर के, बाटे गिरिजा भवनवा।
सीत घाम रहित पवन अँगनवा,
सकल रितु में, जइसे खास ह सवनवा॥
सिया जी सिंगार साजि बसन भूषनवा,
हरषित मनवा, हेतु गौरी पूजनवा।
चलि भइली सखि संग करि असनवा,
मनोहर बानी में, गावत रंग रंग के गानवा॥
कंकन किंकिन बाजत बा गहनवा,
सबद परत त्रिभुवन धनि सरनवा।
नृप दसरथ पुत्र जनक सुतनवा,
लता के ओट से, छनछेप बिलोकनवा॥

यहाँ संस्कृत के शब्दों पर ध्यान दीजिये। 'कर त्रिशूल' तथा 'दसन विराजत' जैसे ये तत्सम शब्द भोजपुरी के प्रवाह में प्रवाहित हो रहे हैं। इतना ही तक नहीं। भिखारी ने बहुत-से संस्कृत शब्दों को तो उस प्रवाह में रगड़कर उनपर भोजपुरी का मधुर रंग चढ़ा दिया है; किम्बहुना भोजपुरी बना दिया है—पवनवा, भवनवा, आगमनवा, सरवनवा, भूषनवा, पूजनवा, असननवा, सुतनवा, बिलोकनवा आदि। भिखारी की यह अपनी विशेषता है कि उनकी भोजपुरी में अन्यान्य भाषाओं के शब्द आ-आकर भाषा को अत्यधिक चमत्कृत कर देते हैं। भोजपुरी का 'वा' या 'वाँ' प्रत्यय भी भूलने लायक नहीं। यह प्रत्यय इतना जोरदार और मधुमय है, जो भोजपुरी का प्राण स्वरूप है और भोजपुरी की विशेष पहचान-स्वरूप है। 'वा' का साधारण प्रत्यय सम्बोधनों में जाकर तरह-तरह का रूप धारण कर लेता है; जैसे—देवर के लिए 'देवरुआ'!

भोजपुरी जैसे लिखी जाती है, पढ़ी नहीं जा सकती। साधारणतः अकारान्त ध्वनि में विवर्ती 'अ' का उच्चारण भोजपुरी में अनिवार्य होता है। अतः अन्यान्य

भाषा-भाषी अथवा हिन्दी भाषी के लिए भोजपुरी में एक यही दिक्कत है। सहूलियत के लिए मैंने जोरदार शब्दों में विन्ह 'ऽ' का इस पुस्तक में सर्वत्र प्रयोग किया है।

जो कुछ भी भोजपुरी भाषाओं में उपलब्ध है, उसी में भिखारी को देखना और समझना है। जितनी भी प्रचलित लोकभाषाएँ हैं और उनके रचनाकार हैं, उनमें भिखारी किसी से हीन नहीं है। काव्य क्षेत्र में भिखारी की तुलना किसी एक कवि से नहीं की जा सकती।

भिखारी बीसवीं शताब्दी के कवि तथा कलाकार थे, मगर, उनके ऊपर भक्ति काल के हिन्दी कवियों की छाप है। शैली सूर-सी गीतिमय (Lyrical) है। भाव-क्षेत्र तुलसी-सा व्यापक है। वेदना की गहराई कबीर-सी है। भाषा जायसी-सी सरस है। अतः भक्ति-काल के प्रमुख सभी कवियों का सामञ्जस्य भिखारी में है। गुप्तजी की भाषा में भिखारी को 'अकिंचन की खिचड़ी' कहा जा सकता है।

मगर भिखारी कोरे कवि अथवा रंगकर्मी ही नहीं थे। भिखारी के प्रत्येक वाक्य पर कर्तव्य की कठोर मुहर लगी हुई है। जैसे सन्त वर कबीरदास जी हैं, कुछ वैसे ही भिखारी भी दीख पड़ते हैं। संतों में कबीर का स्थान सबसे ऊँचा लगता है। कबीर दिन भर कपड़ा तैयार करते थे। शाम को ले जाकर उसे बेचते थे। इस प्रकार जो कुछ पैसे उन्हें प्राप्त होते थे, उसी से उनका जीवन-निर्वाह होता था। उनका सिद्धान्त भी था — 'मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय।'

ऐसा कठोर कर्मठ संत ब्रह्म-ज्ञान में सबसे आगे था। अक्षर लिखने तक की कबीर को जानकारी नहीं थी। मगर जो कुछ भी उन्होंने लिख दिया है, किसी युग या किसी काल में उसे काटा नहीं जा सकता। कबीर की सारी बातें अकाट्य हैं। उन्हीं की एक-एक वाणी लेकर आचार्य रजनीश की कई पुस्तकें निर्मित हुई हैं। उधर भक्त रैदास भी जूते की सिलाई करके अपने जीवन का निर्वाह करते थे। गंगाजी का दिया हुआ सोने का कंगन तक उनके लिए तुच्छ था।

कहने का मतलब कि भिखारी ने जीने-खाने के लिए नाटक-मंडली का गठन कर लिया था; मगर, नाटक के घटे अभिनय में ही वे बँधे नहीं थे, रंगे नहीं थे। रंगकर्मी होकर भी वे सच्चे भक्त थे। भक्ति करते हुए भी वे कर्तव्य-परायण थे, कर्मनिष्ठ थे। भिखारी इस प्रकार का उपदेश कहीं नहीं देते थे कि लोग नाच-तमाशा में दीवाने बन जायँ; वरन, उनकी सहज एक-एक पंक्ति में कर्मठता की ही ध्वनि भरी हुई थी। उनकी एक नायिका 'लक्षणा' में बोलती है —

बेरी बेरी कइलों गोरी गेहुंआ दे दऽ ए गोतिनी मोरी.
अपने ना पोसबि केहु से पोसाइबि ए सजनी।

निर्विवाद है कि उत्तर भारत में भिखारी का अपना एक विशिष्ट स्थान है। मध्य भारत, उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल तथा असम तक विरले कोई होगा, जो भिखारी को न जानता हो। यह सही है कि तुलसी के 'मानस' ने जन-मानस पर पूर्णतः अधिकार प्राप्त किया है; लेकिन, आज यदि उत्तरी भारत के अधिकांश लोगों के हृदय पर हाथ रखकर पूछा जाय कि ऐसा कौन-सा जन-कवि अथवा लोक कलाकार था, जो एक साथ ही हँसाने-रुलाने की क्षमता रखता था, तो उसका एकमात्र यही नहीं और सटीक उत्तर हो सकता है कि नृत्य-संगीत तथा काव्य-कला विशारद—भक्त भिखारी। सब कुछ के बावजूद भिखारी की कोई तमन्ना भी नहीं, थी तो बस यही कि—**सदा भिखारी रहहुं भिखार!**

महेश्वराचार्य

भरौली (भोजपुर) की उर्वरा भूमि पर सन् १९१९ ई० की दीपावली में महेश्वराचार्य का जन्मोत्सव मनाया।

सन् १९५५ ई० से हिन्दी, भोजपुरी में गीत, कविता, निबन्ध तथा तात्त्विक चिन्तन के संदर्भ लिखने की लगन लगी, उत्तरोत्तर बढ़ी और आज भी जाग्रत है। परिणामतः, हिन्दी में 'पंचामृत', 'चतुर्युगी', 'यशोधरा की करुण साधना', 'प्रेमांजलि' 'मानस दर्शन', 'जनकवि भिखारी ठाकुर' एवं भोजपुरी में 'विरहिनी बाला', 'सुराज', 'घटनाचक्र', 'सीता के लाल : समीक्षा' पाठकों एवं विद्वानों के द्वारा चर्चित एवं प्रशंसित रहा। 'चाँद', 'माधुरी', 'विशाल भारत', 'सुधा', 'वीणा', 'सरस्वती' 'विश्वमित्र', 'आज', 'सन्मार्ग', 'प्रताप', 'युगधर्म', 'कर्मयोगी', 'हिन्दी', 'कल्याण', 'नई कहानियाँ', 'प्रदीप' 'अँजोर', 'भोजपुरी साहित्य', 'उरेह', 'भोजपुरी कथा कहानी' के विचारात्मक, गवेषणात्मक, समीक्षात्मक निबन्ध तथा ललित कहानियाँ तथा रसपूर्ण गीत तथा कविता प्रकाशित कर ये अपनी सक्रियता का सातत्य प्रदर्शित करते रहे हैं।

महेश्वराचार्य का दूसरा क्षेत्र है—उनकी तपःसाधना, जिसमें उन्हें शक्ति के अनन्त स्रोत योगीराज बाबा श्री भूतनाथ जी का आशीष मिला और उनका संदेश महेश्वराचार्य भोजपुर के घर-घर में पहुँचाते रहे हैं।

आज इसी मनीषी साहित्यकार की पुस्तक 'भिखारी' आपके सम्मुख प्रस्तुत है।